मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४१

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2007

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

४१

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ४१

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

संशोधन ए बहु हिम्मत मागी ले तेवी प्रवृत्ति छे. परम्पराए एक बाबत, धारो के अमुक शब्द तथा तेनो अर्थ, स्वीकारेल होय; तेने शास्त्र रचनारा शास्त्रकारे/शास्त्रकारोए पोताना ग्रन्थमां ते ज स्वरूपे गुंथी के नोंधी पण दीधेल होय; परन्तु तेमनी सामे ते ज बाबत-शब्द तथा अर्थने जुदा अथवा साचा के यथार्थ अर्थमां वर्णवती सामग्री न होय तेवुं, मध्ययुगमां घणी वखत बन्युं छे, बनतुं हतुं. अने हवे विचारो के ए सामग्री, आजना साधन-सुविधाना युगमां, ओचिंती आपणा जेवाना हाथमां आवी जाय; अने तेना सम्पर्कथी आपणने पेली बाबत, शब्द तथा अर्थनी, परम्परागत स्थिति करतां जुदी अने वळी यथार्थ बाजुनी भाळ मळी आवे, तो शुं थाय ?

साची संशोधनवृत्ति होय तो, निःशङ्क पेला परम्परामान्य शब्द-अर्थना स्थाने यथार्थ बाबतने मूकवानो, स्वीकारवानो उद्यम थाय; परम्परापूजक वर्ग तरफथी आवी पडनारा सम्भवित विरोधने स्वीकारी लईने पण. अने अहीं ज तेनी शोधवृत्तिनी किम्मत पण छे, अने पडकाररूप हिम्मतनी आवश्यकता पण.

वास्तवमां तेम करवामां तेनो आशय परम्परा तोडवानो के तेने जूठी ठरावनानो नथी होतो; पण परम्पराना बहाने, अजाणपणे ज, तेमां प्रवेशी गयेली गरबडने मिटाववानो तथा साची परम्पराने पुनः प्रतिष्ठित करवानो ज होय छे. आटलुं सादुं सत्य जो समजाई जाय, तो शोधकनी क्वचित् थती भूलने समजवानी तथा तेनो स्वीकार तथा सुधार करवानी उदारता अवश्य सांपडे.

- शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

जैन आगम अने मांसाहार : ऐतिहासिक चर्चा	विजयशीलचन्द्रसूरि	१
हर्मन जेकोबीना लेखनो जवाब	ले. पं. गम्भीरविजय गणि	५
परीहार्यमीमांसा	मुनिनेमिविजय-मुनिआनन्दसागर	१२
हर्मन जेकोबीनो पत्र	प्रो. हरमन जेकोबी	२०
प्रो. जेकोबीना पत्रनो उत्तर	मुनि नेमिविजय-मुनिआनन्दसागर	२२
स्याद्वादकलिका ॥	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	२४
सुभट स्वाध्याय	सं. उपा. भुवनचन्द्र	३२
निगोदथी मोक्ष सुधी	प्रो. पद्मनाभ एस. जैनी	३६
जय केसरियानाथजी	म. विनयसागर	४५
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	५१
माहिती : नवां प्रकाशनो		५६
सांकळियुं : 'अनुसन्धान' २७ थी ४१ अंकोनुं	साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री - चारुशीलाश्री	५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम अने मांसाहार : ऐतिहासिक चर्चा

विजयशीलचन्द्रसूरि

इतिहास एना पेटमां अगणित जाणी-अजाणी घटनाओनो-वातोनो भण्डार समावीने बेठो छे. ज्यारे ज्यारे तेनी अजाणी वातो प्रकाशमां आवे छे, त्यारे त्यारे जिज्ञासु मन कोई अनेरा परितोषमां गरकाव थई जाय छे. 'जाणवुं' ए क्रिया जेवो-जेटलो सन्तोष आपे छे, तेटलो-तेवो सन्तोष भाग्ये ज बीजी कोई क्रिया आपी शके छे.

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ. हर्मन याकोबीए जैन आगमोनुं सम्पादन प्रकाशन कर्युं छे ए वात विद्वज्जगतमां जाणीती छे. तेमां श्रीआचाराङ्गसूत्रना सम्पादन दरम्यान तेमने प्रतीत थयुं के जैन ग्रन्थोमां पण मांसाहारनुं विधान छे. एटले तेमणे ते वात पोताना शोध-पत्रो द्वारा 'खास संशोधन' रूपे जाहेर करी. स्वाभाविक रीते ज जैनोए अने जैनाचार्योए ते सामे तीखी प्रतिक्रिया आपी, अने 'जैन आगमोमां मांसाहारनुं विधान नथी ज.' तेवी शास्त्रो अने परम्परा द्वारा स्वीकृत मान्यतानुं प्रतिपादन कर्युं.

ते वखते, एटले के आजथी आशरे ११३ वर्षो अगाऊ, जेमणे आ वातनुं खण्डन करेलुं, तेमां तपगच्छ जैन संघना मूर्धन्य साधुपुरुषो पंन्यास श्रीगम्भीरविजयजी, मुनि श्रीनेमिविजयजी, मुनि श्रीआनन्दसागरजी - आ त्रणनां नामो आगळ पडतां छे. ते समयना 'मुंबई समाचार'मां आ विषये चर्चापत्रो तथा सामसामां निवेदनो छपायां छे. तो बन्ने पक्षो वच्चे परस्पर पत्रव्यवहार पण थयेल छे.

आमां चार लखाणो अहीं आप्यां छे. १. पं. गम्भीरविजयजीनो लेख. २. मुनिद्वय - नेमिविजयजी तथा आनन्दसागरजीनो डॉ. याकोबी उपर लखायेल विस्तृत पत्र : परीहार्यमीमांसा. ३. डॉ. याकोबीए ते मुनिद्वय उपर लखेल प्रत्युत्तर. ४. डॉ. याकोबीने ते बे मुनिवरोए आपेल प्रत्युत्तर. आमां प्रथम लेख गुर्जरभाषाबद्ध छे; बाकी ३ संस्कृत भाषामां छे.

प्रथम लेखमां पं. गम्भीरविजयजीए आचाराङ्गसूत्रना ते सूत्र साथे तेनो हृदयंगम तरजुमो आप्यो छे. गुरुगम के गुरुपरम्पराप्राप्त आम्नाय मेळवनार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतार्थ साधु ज आपी शके तेवो सरस-स्पष्ट खुलासो तेमणे आप्यो छे, अने ते द्वारा 'जैन मुनि मांसाहार न करे; नहोता करता' ते मुद्दो तेमणे सुग्रथित रीते साबित कर्यो छे. अत्यन्त रोगातङ्कादि कारणे अभक्ष्य पुद्गल पदार्थनो बाह्य उपयोग करवानुं ते सूत्रपाठ सूचवे छे, तेनुं पण तेमणे विशद प्रतिपादन कर्युं छे.

एक वात समजवायोग्य छे. सूत्रना शब्दो द्विअर्थी छे. तेनो प्राथमिक अर्थ मांसपरक थतो होवा छतां संस्कृतज्ञ आचार्यो वगेरेए तेना निघण्टु (वनौषधि) शास्त्राधारित वनौषधिपरक अर्थ करवानुं वलण सुदृढपणे अपनाव्युं छे, जे आजे पण प्रवर्ते छे. पं. गम्भीरविजयजी समक्ष, टीकाकार महर्षिओ आदिना प्रतिपादन-आधारित, ते सूत्रगत ते ते शब्दोना ते ते प्राथमिक अर्थो ज स्वीकारवानी परम्परा पण छे. ते परम्परा प्रमाणे, विलक्षण संजोगोमां बाह्यपरिभोगरूपे मांस आदिनो उपयोग करवानुं अपवादपदे मान्य होवा छतां, आहाररूपे तेनो उपयोग-उपभोग निषिद्ध अने अमान्य ज होवानुं तेमणे सिद्ध कर्युं छे. अने आ परम्पराना परिप्रेक्ष्यमां ज, निघण्टुशास्त्रादिनी मददथी ते ते शब्दोना वनस्पतिपरक अर्थ करीने, बाह्य के अभ्यन्तर कोई पण स्वरूपे मांसपरिभोगनो जैन ग्रन्थोमां निषेध होवानुं ज सिद्ध करनार आचार्योने, (दा.त. पाशचन्द्रसूरि) तेमणे, असत्यभाषी तरीके वर्णव्या जणाय छे. सापेक्षभावे आ वात लईए तो परस्पर विरोधनो परिहार थई शके छे. तत्त्व तो हमेशां बहुश्रुतगम्य ज होवानुं. परन्तु एक विशिष्ट दृष्टिकोण आ द्वारा आपणने सांपडे छे, ए नक्की.

आ लेखनुं लेखनवर्ष जोके कर्ताए नोंध्युं नथी, छतां ते वि.सं. १९५३-५४ आसपास लखायो होय तेवुं अनुमान थाय छे. आ लेखनी कर्ताए स्वहस्ते लखेली जणाती हस्तप्रति भावनगर तपा. संघना हस्तलिखित ज्ञान भण्डारमां उपलब्ध छे. पांच पत्रनी ते प्रतिनी झेरोक्स नकल परथी आ लेख अत्रे आपेल छे. आ प्रति ते भण्डारमां 'जेकोबीनो पत्र' एवा नामे नोंधायेल छे. तेनो पोथी नं. ४०३ छे, प्रत नं. १३४८.

बीजी पत्रात्मक रचना छे **परीहार्यमीमांसा**. वि.सं. १९५४मां, मुंबई समाचार वर्तमानपत्रमां डॉ. जेकोबी तथा मेक्समूलर नामना विद्वानोनो पत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छपायो; ते पत्रनी नकल श्रावक हीरजी खीमजी कायाणी नामे गृहस्थ द्वारा स्तम्भतीर्थ-खम्भातमां बिराजता मुनि नेमिविजयजी तथा आनन्दसागरजीने प्राप्त थई; ते बन्नेए तेना जवाबमां जे पत्र-लेख लख्यो, ते ते समये 'परीहार्यमीमांसा' नामे पुस्तिकारूपे प्रकाशित थयो. तेमणे निघण्टु आदि विविध शास्त्रो, टीकाग्रन्थो आदिनां/प्रमाणो टांकीने तथा विविध तर्क अने युक्तिओपूर्वक, 'जैन आगममां मांसाहारनुं विधान छे' तेवी, उक्त विद्वानोनी वातनुं खण्डन करेल छे. साथे ने साथे, ते समये कोई जैन गृहस्थे पण उक्त बे विद्वानोना मतनुं समर्थन करतो लेख समाचारपत्रमां लख्यो हशे, तेनुं पण '**श्रमणोपासका-पलापप्रकाशः**' एवा शीर्षक नीचे, आ ज पत्र-लेखमां बन्ने मुनिओए खण्डन कर्युं छे.

आ पुस्तिका सं. १९५५मां खम्भात-जैनशालाना शेठ पोपटलाल अमरचंदे प्रकाशित करी हती. पं. गम्भीरविजयजीनी सौम्य भाषानी तुलनामां, ते वखते युवान एवा आ बन्ने मुनिराजोनी भाषामां आक्रमकतानो स्पर्श माणी शकाय छे. तो पाछळनां वर्षोमां जैन संघमां 'शासनसम्राट्' तथा 'आगमोद्धारक' एवा बिरुदो वडे विख्यात बनेला महान जैनाचार्योनो मैत्रीपूर्ण सहवास तथा सहयोगमां कार्य करवानी रीत - ए बधांनो पण आ पत्र-लेख द्वारा संकेत मळी आवे छे.

त्रीजा क्रमांके आवे छे डॉ. याकोबीनो उक्त बे मुनिओ उपर आवेल जवाब. तेमां तेमणे 'जे ते शब्दो वनस्पतिवाचक नहि, पण मांसादिवाचक ज छे' एवा पोताना मन्तव्यना समर्थनमां दलीलो-तर्को आलेख्या छे. छेवटमां तेमणे बे महत्त्वनी वातो नोंधी छे : "अमने तो आ ज अर्थ बेसे छे. परन्तु अमे न समजी शकता होईए अने अन्यथा अन्य अर्थ पण अभ्यासीओ करी शकता होय तो तेओ भले तेम करे. अने, जो अमे अमारा द्वारा सम्पादित आचाराङ्गसूत्रनी बीजी आवृत्ति छापीशुं, तो टिप्पणीरूपे तमे बेए जणावेल अर्थ जरूर टांकीशुं."

परम्परा अनुसार ते विद्वाने करेल अर्थ अनधिकृत-अनुचित भले हतो; पण एक त्राहित अभ्यासी तरीके तेमणे सूत्रना शब्द तथा तेना प्राथमिक थता अर्थने स्वीकारीने पोतानुं मन्तव्य जाहेर करेलुं, ए मुद्दो, आपणने गमे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न गमे पण, आपणे स्वीकारवो ज पडे. पोताना मन्तव्यना समर्थनमां तर्को वगेरे तेमणे आप्या ज छे; अने छतां परम्पराप्राप्त पद्धतिजन्य अन्य अर्थघटननो तेमणे तिरस्कार नथी कर्यो, पण टिप्पणीमां राखवानुं स्वीकार्युं छे. आवी समजण केटला लोको दाखवी शके ?

पत्र संस्कृतमां लखायो छे. तेनी भाषा तथा रजूआत/शैली जोतां कोईने ख्याल न आवे के आ पत्र कोई जर्मन विद्वाने लखेलो छे ! एमनां विधानो के मन्तव्यो साथे साव असम्मत होवा छतां एमना ज्ञान अने चिन्तनने तो दाद आपवी ज पडे.

आ पछी आवे छे डो. याकोबीना पत्रनो मुनिद्वय द्वारा अपायेल प्रत्युत्तर. खीमजी हीरजी कायाणी द्वारा याकोबीनो पत्र विलम्बे पहोंच्यो होई तेनो जवाब राजनगर (अमदावाद)थी बन्ने मुनिओ आपी शक्या छे ते पत्र वांचतां जणाय छे. प्रायः सं. १९५६नुं ए वर्ष होवुं जोईए.

आ पत्रमां तेमणे डो. याकोबीना पत्रगत मुद्दाओनुं सुपेरे खण्डन कर्युं छे. परन्तु याकोबीने तेमणे सम्बोधन कर्युं छे ते खास ध्यान आपवा योग्य छे : "**ज्ञानाभ्यासविलासवासितान्तःकरणान् संस्कृताध्यापकान्**". केटलो विवेक नीतरे छे आ शब्दोमां ! मतभेद एटले झघडो के विरोध ज एवी वृत्ति आ लोकोमां नहोती, तेनुं आ ज्वलन्त उदाहरण छे.

नेमिविजयजीए अमदावादमां **'जैन तत्त्वविवेचक सभा'** स्थापी हती, अने तेना उपक्रमे **'जैन तत्त्वविवेचक'** नामे मासिक पत्रिका पण प्रगट थती हती, ते जणाववुं अहीं उपयुक्त छे. ते सभाना सेक्रेटरी शाह केशवलाल अमथाशा वकीलना नामे तेओए जवाब मंगाव्यो छे. परन्तु ते पछी कोई जवाब आव्यो होय तो ते प्राप्त नथी.

आपणा इतिहासनुं एक वीसरावा आवेलुं आ प्रकरण छे. आम छतां हजी पण क्यारेक क्यारेक आ विषय पर गमे तेवा अनधिकारी माणसो गमे तेम लखी नाखता जोवा-जाणवा मळे छे. प्रस्तुत थयेल पत्रादि लेखो, एक बाजुए आ विषये मार्गदर्शन आपी शके तेम छे, तो बीजी बाजुए काळना गर्तमां सरी पडता एक ऐतिहासिक पृष्ठने चिरंजीवी बनाववानो पण आमां खयाल छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्मन जेकोबीना लेखनो जवाब

•

ले. पं. गम्भीरविजय गणि

॥ ६० ॥

ॐ नमो वीतरागाय ॥

स्वस्थानश्री भावनगर पन्यास गम्भीरविजयगणिप्रक्रान्तोऽथ प्रोफेसर जेकोबीयें जे श्रीआचाराङ्गनो तरजुम्मो करतां बीजा श्रुतस्कन्ध मध्ये अध्ययन-२ना उद्देशो-१०, सूत्रपाठ-२ना तरजुम्मा विषे-

"सिया णं परो बहुअट्ठिएण मंसेण वा मच्छेण वा उवणिमंतिज्जा" इत्यादि सूत्रपाठनो अर्थ- बहु हाडकावाला मांस तथा बहु कांटावाला मच्छें करी कदाचित् गृहस्थ आमन्त्रण करें - इत्यादिक प्रकारें कर्यो छे, ते आ अर्थ आ स्थलमां घणो विपरीत नथी, पण तेमने भोगक्रियानो विषयप्रमुख समझाणो नथी. तेथी केटलोक विपरीत छे तेनो खुलासो नीचे मुजब जुओ:

प्रथम तो जैन शास्त्रोनो अर्थ गुरुगमनें आधीन रह्यो छे. तेथी स्वतन्त्रपणें एकला न्यायें के व्याकरणना बलथी यथार्थ कोईथी बनी शकतो नथी. वास्ते ज घणा आगमोमां कह्यो छे:

"गुरुमइऽहीणा सव्वे सुत्तत्था - गुरुमत्यधीनाः सर्वे सूत्रार्थाः" इत्यादि. वास्ते आ सूत्रना अर्थमां पण गुरुगमनी जरूरता छे. तेथी वृत्तिकारो पण विस्तारना भयथी कदि अक्षरार्थ मुकी देय छे, तोहि तेओं गुरुगम भागनी दिशिनो दर्शावतो करें छे. वास्ते वृत्तिकार भगवानें अक्षरार्थ तो आ सूत्रनो कर्यो नथी पण तेमने जे दिशि दर्शावेली छे ते दिशिना अनुसारथी अर्थ जे मुजब थाय छे ते अर्थ आ छे :

प्रथम तो **सिया णं** आ पदनो अर्थ तेमने घणा सम्बन्धवालो सूचव्यो छे जे - "**सिया णं** - स्यात् कदाचित् क्वचिदेव महारोगावस्थायां प्रचुरधर्महान्यां सञ्जायमानायां सत्यां भिक्षुः कुशलवैद्योपदेशेन यद्यस्पर्शनीयमपि (नीयस्याऽपि) मांसस्य स्पर्शने समुद्भूतप्रयोजनवान् स्यात् तदा ज्ञानाद्यर्थी सन् तं गवेषयेत् । गवेषयंश्च साधोः परो-भिक्षुसमूहादन्यो गृहस्थः" ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ स्थलें **स्यात्** - कोईक ज कालमां, पण जेवि तेवि वखतें नहि. **क्वचिदेव** - कोइक ज महारोगनी प्राप्तिमां पण हरेक रोगमां नही. **महारोगावस्थायां** ते लूता नामे महारोगनी अवस्थामां. आ लूतारोग जेने कोइने पूर्वे करेला कर्मना उदयथी थाय छे तेना शरीरमां रुंआडे रुंआडे अति सूक्ष्म जीवांत उपजी जाय छे. तेथी हंमेस रसी स्रव्यां करे छे. खुजाल-बलतरा पण घणी होय. तेथी करीनें ज्ञानध्यानादिक थइ शके नहि.

प्रचुरधर्महान्यां सञ्जायमानायां सत्यां - तेथी पोतानें अति घणी ज धर्मनी हानि थातें सतें. आ स्थले धर्महानिनो हेतु ते पोताना शरीरमांथी जे रसी वहे छे ते ज छे. केम जे जिनागममां कह्यो छे के जो पोताना शरीरमांथी पण रसी-रुधिर-परु विगेरे जिहां सुधी निकलता होय तिहां सूधी अस्वाध्याय छे. तेथी ज्ञाननो उच्चार जरातरा पण करवो नहि, ने जो करे तो ज्ञानविराधक थाय. एटले ज्ञाननो फल न पामे ने सामो संसार वधे एवो निषेध होवाथी ज्ञानाभ्यास तेनें सदा रोकाय छे. केम जे लूतावाला दरदीने शरीरे रसि सदा रहे छे माटे.

भिक्षुः - साधु जे ते रोगनी उपशान्ति थवा वास्तें **कुशलवैद्योपदेशेन** - ते रोगनी निवृत्तिना उपायमां कुशल-हुसियार होय एवा वैद्यना केहेणे करीनें जे ते वैद्यें कह्यो होय के साधुजी तुमों आ औषध लेइने रांधेला मांस उपर नाखीनें ते मांसथी जेटलो लूतावालो अङ्ग होय तेटला सर्व अङ्गने प्रस्वेदित करजो (परसेववो), तेथी मटि जासे. ए प्रकारे वैद्यना कहेवाथि किं वा पोताना के अनेरा साधुना जाणपणाथी ते दरदी साधु,

यद्यस्पर्शनीयमपि - जो पण साधुओनें मांसनो स्पर्श करवो (तेने अडवो) वाजबि नथि, तो पण **मांसस्पर्शने** - मांसने अडवा विषे **समुद्भूत प्रयोजनवान् स्यात्** - उपज्यो छे स्पर्श करवानो गाढो प्रयोजन (कारण) जेने एवो थाय, **तदा** - ति वारे, **ज्ञानाद्यर्थी सन्** - ज्ञानाभ्यासनी ध्याननी संयमप्रमुखनी वृधिनो अर्थी - कामनावालो थयो सतो, तं - ते मांस प्रतें, **गवेषयेत्** - मांसभोजी गृहस्थोंने घरे तेनी तलास करवा निकले. **गवेषयँश्च** - तेनी तलास वास्तें फिरतां सतां, **साधोः** - ते साधुने.

आ प्रथम कहेल सर्व अर्थना समुदायने संग्रहीने चालता सूत्रनी आदिमा एक **स्यात्** शब्द बेसो छे ते प्रोफेसर जेकोबी गुरुगम विना जाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्या नहि तेथी अर्थनो अनर्थ समझाणो छे. ने ते ज कारणथी **पाशचन्द्रादिकें** पण फलादिक अर्थ लखीने उत्सूत्रभाषण रूप अनर्थ कर्या छे. ए **स्यात्**-पदनो अर्थ संपूर्ण थयो.

हवे **पर** शब्दनो अर्थ : ते गवेषणा करतां साधुनें **परो = भिक्षुसमूहादन्यो गृहस्थः** - पर, जे साधुओना समुदायथी अनेरो अर्थात् गृहस्थ ते **बहुअट्ठिएण मंसेण वा = बह्वस्थिकेन मांसेन वा** - घणा हाडवाला मांसे करीने, वा-अथवा, **मच्छेण = मत्स्येन बहुकण्टकेन** - घणा कांटावाला मच्छें करीने, **उवणिमंतिज्जा = उपनिमन्त्रयेत्** - आमन्त्रणा करे,

आउसंतो समणा ! = आयुष्मन् श्रमण ! - हे चिरंजीवी साधु !, **अभिकंखसि = त्वमिच्छसि** - तुमो इच्छसो, **पडिगाहित्तए = प्रतिग्रहीतुं** - ग्रहण करवानें, **बहुअट्ठियं मंसं = अस्मद्गृहे बह्वस्थिकं मांसं** - अमारा घरमां घणा हाडवालो मांस छे, **एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा = तस्यैतत्प्रकारकं निर्घोषं श्रुत्वा** - तेनो एवा प्रकारनो वचन सांभलीने, **णिसम्म = निशम्य** - मन साथें विचारी, **से = सः साधुस्तं मांसं** - ते साधु ते मांस प्रतें, **पुव्वामेव आलोएज्जा = ग्रहणात् पूर्वमेवाऽऽलोकयेत्** - ग्रहण कर्याथी पहेलां ज नजरें जोवे,

आउसो त्ति वा = आयुष्मन्नित्येवं - हे चिरंजीवि ! एवा प्रकारे, **वा** = अथवा, **भइणि त्ति वा =भगिनीति वा** - हे बाई - ए प्रकारें, **णो खलु मे कप्पति बहुअट्ठितं मंसं पडिगाहित्तए = बह्वस्थिकं मांसं मम ग्रहितुं न कल्पते** - घणा हाडकावालो मांस म्हारे ग्रहण करवा योग्य नथि - ए प्रकारें देनार प्रतें कहीने वलि कहे, **अभिकंखसि मे दाउं = यदि त्वं मम दातुमभिकाङ्क्षसि** - जो तु मने देवा इच्छे छे तो, **जावतितं तावतितं पोग्गलं दलियाहि = यावन्मात्रं पुद्गलं तावन्मात्रं देहि** - जेटलो मांस मात्र छे तेटलो दे, **मा अट्ठियाइं = अस्थिकानि मा देहि नाऽस्ति मे बहुना प्रयोजनं,** - हाडकाओ म दे, म्हारे घणानो काम नथी.

"से सेवं वदंतस्स परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहगंसि बहुअट्ठियं मंसं परिभाएत्ता णिहट्टु दलएज्जा" ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से परो = स परो गृहस्थः - ते पर जे मांस देनार गृहस्थ जन, **से = तस्य** - ते साधुने, **एवं वदंतस्स = एवं वदमानस्य** - प्रथम जनावेली रीतें केहनारा साधुना, **अंतो अभिहट्टु = अन्तरभिहृत्य** - समीपें आवीनें, **बहुअट्ठियं मंसं परिभाएत्ता = बह्वस्थिकं मांसं धर्मद्वेषादिभावेन साधुदानाय परिभाज्य** - घणा हाडवाला मांस प्रतें साधुना धर्म उपर द्वेष परिणामादिकें करीने, **णिहट्टु = निहत्य** - बलात्कारे करी, **पडिग्गहगंसि = काष्टच्छविकादौ** - लाकडानी काचली प्रमुखमा, **दलएज्जा = दद्यात्** - देवा मांडे, **तहप्पगारं = पडिगाहगं = तथाप्रकारकं प्रतिग्राह्यं** - तेवा प्रकारना ग्राह्य पदार्थनें,

"परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते जाव नो पडिगाहेज्जा" ।

परहत्थंसि = गृहस्थहस्तस्थं - घरना धनीना हाथमां रह्यो, **वा** - अथवा, **परपायंसि = गृहिभाजनस्थं** - घरधनीना भाजनमां रह्यो ज, **अफासुयं = तद्गतास्थ्यादित्यागेनाऽन्यजीवहिंसाहेतुकं** - ते मांहिला हाडकादिक नाखवाथी अनेरा कीडी-कुंथु प्रमुख जीवोंनी हिंसानुं कारण छे माटे, **अणेसणिज्जं = ईप्सितप्रयोजनायामनेषणीयं** - पोतानी इच्छित कार्यनी सिद्धिमा नहि इच्छवा लायक, **लाभे संते = लब्धे सति** - मिलते छतें पण, **णो पडिगाहेज्जा = न प्रतिगृह्णीयात्** - न लेयसे,

आहच्च पडिगाहिए सिया = स पूर्वोक्तोऽयोग्यमांस (तत् पूर्वोक्तमयोग्यमांसम्) **आहत्य गृहीतः स्यात्** - ते प्रथम कहेलो अजोग मांस सहसात्कारें नाखी देवाथी लेवाय गयो होय तो, **तन्नो हित्ति वएज्जा** = साधु देनारनें **हा धिक** ए प्रकारे न कहे - क्रोधरूप छे माटे, **णो अणिहि त्ति वएज्जा** = हे अजाण - एम पण न कहे,

से तमायाय = ते साधु ते मांस लेईने, **एगंतमवक्कमेज्जा** = एकांत प्रदेशे जाय, अहे = नीचे घनी उंडान सूधी दग्ध थयेली एवी, **आरामंति वा** = वननी भूमि, **उवस्सयंसि वा** = कोई मकाननी भूमि जेमां, **अप्पंडए** = कीडी प्रमुखना इंडा न होय, **जाव संताणए** = यावत् शब्दथी बीज-अंकुरा-घास-उदेहि-जीवातना दर-पाणी-करोलीया जाल प्रमुख न होय तिहां,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंसगं मच्छगं भोच्चा = मांसमात्रं वा मत्स्यमात्रं भोक्ता (भुक्त्वा ?) - लूतादूषितदेहप्रदेशस्वेदनं संयोजयित्वा, न तु भक्षित्वा - मांसमात्रने अथवा मच्छमात्रने भोगवीने, एटले लूता रोगथी व्यापेला देहविभाग प्रते परसेवावीने, पण खाइने नही; हाड-कांटाओने लइने एकांते, एटले निरजीव दग्ध भूमिप्रदेशे नाखे, तथा मांसें करी वारंवार स्वेदवो रह्यो छे वास्ते तेनो त्याग सूत्रमा न कह्यो, निष्प्रयोजन थयें परिठववानो छे माटे.

ए प्रकारें आ सूत्रना अक्षरार्थ थाय छे तिवारे जे प्रोफेसर जेकोबीयें **भोगक्रियानो अर्थ भक्षण कर्यो ते क्रियानो विषय बाहिर कर्मोना उपयोगमां लेवानो छे, एम न समझवाथी लिख्यो ते असत्य छे.** ने तेथी ज **जैनी पूर्वकालमा मांसाहारी हता - ए लिखाण पण असत्य छे.** केम जे तीर्थंकरोनो अवतार अवश्य राजकुलमा होय, कदि अनेरे कुले अवतरे तो इन्द्र गर्भने पालटीनें राजकुलमें मुके ए नियम छे. पण कांई जैनी राजाओना कुलमा ज अवतरें छे ने परणे छें एवो नियम जैन शास्त्रोमां नथी.

एटलो तो नियम छे जे तीर्थंकर घरवास रहे तो हि धर्मविरुद्ध वस्तु पोते आचरे नही, तेम ज जिहां लगें तेमने केवलज्ञान उपज्यो न होय तिहां लगे परने धर्म-उपदेश पण देय नहि - एवो तेमनो अवश्य आचार जैन शास्त्रोमां कह्यो छे. तेथी जादवों श्रावक हता एवो विवाह वखतें कइ शकाय नहि.

तथा अमोइ उपर लख्या मुजब जे आ सूत्रनो अक्षरार्थ कर्यो छे ते वृत्तिकार भगवानना आशयना आधारथी. ते वृत्तिपाठ लिखिइं छे :

एवं मांससूत्रमपि नेयम् । अस्य चोपादानं क्वचिल्लूताद्युपशमनार्थं सद्वैद्योपदेशतो बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना ज्ञानाद्युपकारकत्वात् फलवद् दृष्टम् । भुजिश्चाऽत्र बहिः परिभोगार्थे, नाऽभ्यवहारार्थे, पदातिभोगवदिति च्छेदसूत्रेष्वपि प्रायो द्रष्टव्यम् । एवं गृहस्थामन्त्रादिविधि-पुद्गलसूत्रमपि सुगममिति । तदेवमादिना च्छेदसूत्राभिप्रायेण ग्रहणे सत्यपि कण्टकादिप्रतिष्ठापन(परिष्ठापन)विधिरपि सुगम इति ।

एनो संक्षेपथी भावार्थ एम छे : **एवं** - जेम प्रथम सेलडी ने सींगोना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रनो अक्षरार्थ कर्यो छे तेम, **मांस सू०** - मांसना सूत्रनो पण अक्षरार्थ जानी लेजो.

अस्य चो० - आ मांसादिक ग्रहण ते क्वचित् - कोइक ज कालमा कोइ महान् कार्य अटकी पडवाथी करवामा आवे. स्या माटे ? ते कहे छे : **लूता०** - लूता नामे रोग थयो होय तो तेनी उपशान्तिने अर्थे, लूतानो स्वरूप प्रथम लिख्यो छे ते, आदि-शब्दथी एज आचारांग सूत्रना पेहला श्रुतस्कन्ध मा निर्युक्तिकारें तथा टीकाकारें घणी जातीना रोग वर्णव्या छे, तेमां लूता जेवा होय ते लेवा.

ते वास्तें पण, **सद्वैद्योपदेशतः** - सांचो कुशल उत्तम वैद्यना केहवाथी- औषधनी मेलवनी बतावाथी, ते रीते पण, **बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना** - तेनो शरीर उपर उपभोग लेवें करीनें, ते ए रीतें तेथी दरद उपर परसेवो उपजावेवे करीने. एम पण अशुचिनो भोग शा वास्तें - ते कहे छे - **ज्ञानाद्यु०** ज्ञानध्यानादिकनी वृद्धिरूप उपकार करे छे माटे ते भोग जीवनें शुभ फलकारी कह्यो छे.

भुजिश्चाऽत्र बहिः परिभोगार्थे - आ ठेकाने भोगक्रिया जे **भोच्चा** शब्द सूत्रमा कह्यो छे ते बाहिर एटले शरीरना उपरला भोगोमां लेवा रूप अर्थमां वर्त्ते छे, **नाऽभ्यवहारार्थं** - पण खावाना अर्थमा आ ठेकाणे भोगक्रिया वर्त्तती नथी; केम जे श्रीदशवैकालिक सूत्रना पांचमा अध्ययनथी लेईने (**प्रश्नव्याकरण**-प्रमुख सूत्रोमा कह्यो छे के- जे साधु-प्रमुख दारु-मांसादिक शरीरने मस्तकारी पदार्थ खाय ते मायावी अपयशें, लोकनिन्दनाइं, विडम्बनाइं पीडातो, धर्मभ्रष्ट, देव-गुरुनी आराधनाथी चुक्यो, मरण वखतें पण धर्मवासना पामे नही; तो विचारी जुओ जे खावानो अर्थ केम घटे ?

तथा दारु-मांसनी वात तो रही पण **बृहत्कल्प-व्यवहारादिक** छेदसूत्रों ना निर्युक्ति-भाष्योमां कह्यो छे के-जे साधु डुंगली, लसन, सूरण, बटाटां, रींगणा, गाजर, मूला, सकरकंद, आदु-प्रमुख अनुचित वस्तुना शाक-चटणी विगेरें राधेला तइयार निरारंभी शुद्ध मिल्यो छे एम जाणीने लेइने खाय तो तेने महानिध्वंस परिणामि कह्यो छे, तेने गुरु चौमासी-दंड लिख्यो छे ने तमोगुणी कह्यो, तिवारें मांस खावा वात क्यां रही ? अपितु क्यांहिं पण न होय माटें

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

बाहिर भोग अर्थ जे टीकाकारें कर्यो ते सत्य छे.

ते बहिर्भोग अर्थनें दृष्टान्तथी दृढ करे छे : **पदातिभोगवदिति** - जेम पालो = सिपाइ भोग छे तेम कोई कहे - **अस्मद्भोग्योऽयं पदातिः** - आ सिपाई अमारा भोगनो छे एटलें अमारा काममा आवे छे, तेम ते मांस साधुना काममा आव्यो माटे भोग छे, **इति** = ए प्रकारे, **च्छेदसूत्रेष्वपि द्रष्टव्यं** = कहेल कारणोथी बहिर्भोगमां मांस लेवानो **बृहत्कल्पादि** च्छेदसूत्रोंमां पण कह्यो छे.

एवं गृहस्थामन्त्रणादिविधिपुद्गलसूत्रमपि सुगममिति = एम टीकामा दर्शावेल शैली मार्गे करीने गृहस्थ करी आमन्त्रणादिक, तेना विधिनो सूत्रनो तथा पुद्गल जे मांसना सूत्रनो पण व्याख्यान सुगम थयो, **इति** = ए प्रकारे, **एवमादिना** = इत्यादि कारणे करीने, **च्छेदसूत्राभिप्रायेण** = छेदसूत्रोना आशय जाणवें करीनें, **ग्रहणेऽपि** = बहू हाडकावालो मांस लिवानो होय तो पण, **कण्टकादिपरिष्ठापनविधिरपि सुगम** = इति कांटादिक परिठववानो विधि पण कहेली शैलीइं सुगम छे इम जाणवो.

श्रीशीलाङ्काचार्ये आ टीका विक्रम संवत् ६७८नी शालमा संपूर्ण करी छे, केम जे तेमने शाकी संवत् ७९८ लिख्या छे ते शाकी राजा विक्रमथी १२० वर्ष पहेलां थया छे. एम आ टीका रचाई १२७८ वर्ष थया, ने आ टीकाथी पेलां आचारांगनी संक्षेप टीका **श्रीगन्धहस्तिसूरिकृत** इति. ते टीका-मिश्र आ टीका तेमने करी छे. तेथी सिद्ध थाय छे के पूर्वे पण जैनी साधु मांसाहारी न हता.

ने ए आचार्य महासत्यवादी हता ए पण सिद्ध थाय छे. केम जे जिनागमोमां एकास्थिक-बह्वस्थिक फलादिक कह्या छे. तेथी ए आचार्य महाशक्तिमान् फलादिरूपे व्याख्या करवा समर्थ छे ते पण असत्यवचनना पापथी डरीने करी नहि, तेथी महासत्यवादी छे ए सिद्ध छे.

ने आ सूत्रनो बालबोध करनार **पाशचन्द** संवत् १५७२ मा निकलेल, तेने कुल वर्ष ३८३ थया छे, ते जिनोक्त भाव अन्यथा करवाना तथा असत्यभाषीपणाना पापथी नही डरतें फलादिरूप अर्थ कर्यो ते अनर्थ छे.

तस्मान्नमः सत्यवादिने ॥ श्री ॥ श्री ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीहार्यमीमांसा

मुनिनेमिविजय-मुनिआनन्दसागर

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

येनाऽक्षालि सुभव्यमानसतमोलेपः सुधासोदरैः
सूक्ताम्भोभिरदर्शि दर्शनमनुक्रोशाकरेणाऽऽत्मना ॥
स्याद्वादाभिधमन्यपक्षदलनप्रौढं सुसिद्धिप्रदं
ध्यायावो जगतां हितं जिनवरं धर्मप्रदानोद्यतम् ॥१॥

हिमांशुकिरणप्रभामदविलासहासोद्यते
यदीययशसि श्रुते न मधुरा सुधा श्लाघ्यते ।
सुभव्यजनताज्ञतातमसि सूरचर्यापरः
स **वृद्धिविजयो** जयत्वतुलमुक्तियुक्तो मुनिः ॥२॥

श्रीमज्जन्मादिकल्याणकपवित्रीकृतवाराणसीक्षेत्र-मिथ्यात्वतिमिरदूरीकरणसहस्रकिरणायमान-भव्यजनविषमगदागदंकारा-ऽऽसन्नसिद्धभव्यजनचेतश्चमत्कारकारिसंसारपारावारतरणि-भूमिपालभालालङ्करणचारुचरणारविन्द-त्रिजगदवतंस-परमानन्दनिधानसम-कामवितरणाधरीकृतकल्पद्रुम-श्रीमत्स्तम्भनपार्श्वनाथसनाथीकृतात् **स्तम्भतीर्थात् मुनिनेमिविजयानन्दसागराभ्यां मि० जिकोबीमेक्समयुलरान्** प्रति दत्तो धर्मलाभः समुल्लसतुतराम् ।

विशेषस्तु - समागतं वः पत्रं **मुम्बईपुर**वास्तव्य**श्राद्धखीमजीहीरजी**नामकं प्रति । तच्च **मुम्बईसमाचार**द्वारा वाचयित्वा ज्ञातवृत्तान्तावावां तत्प्रत्युत्तरं निविवेदयिषू पत्रमिदं लेखितुमुपक्रान्तवन्तौ स्वः । तथाहि-

यत्त्वाचाराङ्गीयार्थप्रकाशकाङ्गलदेशीयशब्दनिबद्धग्रन्थप्रपन्नभस्मादावस्थिप्रक्षेपपूर्वकं मत्स्यमांसभोजनं कार्यमिति भवत्कृतद्वितीयश्रुतस्कन्धप्रथमाध्ययनदशमोद्देशकीयसूत्रतात्पर्यार्थवर्णनवाचनचकित**कायानी**प्रेषितपत्रोत्तरे मत्स्यशब्दप्रयोगस्य सर्वकोशसंदर्शनबलेन मीनातिरिक्तार्थतात्पर्यविषयकत्वेन वक्तुमशक्यत्वादाचाराङ्गसूत्रस्य जिनकल्पिकमुनिमात्राचारप्रकाशकत्वेनाऽद्यतन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनमुनिव्यवहाराविषयत्वेऽपि मांसादिभक्षणस्य प्राचीनजिनकल्पिकमुनि-व्यवहारविषयत्वे बाधकाभावात् मांसमीनभक्षणमाचाराङ्गैतत्सूत्रसम्मतमिति भवद्भिरभ्यधायि तत्सर्वमसमञ्जसम्।

तिक्ता रिष्टा कटुर्मत्स्या, चक्राङ्गी शकुलादनी

इति प्रसिद्धकलिकालसर्वज्ञ**श्रीमद्धेमचन्द्र**कोशदर्शिताया: प्रज्ञापनादि-सिद्धान्तकोशप्रतिपादितैरावणवृकीशिखण्डन्यादिजीवसमानाभिधाननिरूपित-वनस्पतिनिष्ठावाच्यतावत् सर्वकोशसन्दर्शनप्रतिज्ञाऽनिवारणीयमत्स्यशब्दवाच्यताया निर्बाधतयोपलब्धेः ।

एवं मांस सूत्रमपि नेयम् । अस्य चोपादानं क्वचिल्लूताद्युपशमार्थं सद्वैद्योपदेशतो बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना ज्ञानाद्युपकारकत्वात्फलवद्दृष्टम्। भुजिश्चाऽत्र बाह्यपरिभोगार्थे, नाऽभ्यवहारार्थे, पदातिभोगवदिति छेदसूत्रे-ष्वभिप्रायो द्रष्टव्यः। एवं गृहस्थामन्त्रणादिविधिपुद्गलसूत्रमपि सुगममिति तदेवमादिना छेदसूत्राभिप्रायेण ग्रहणे सत्यपि कण्टकादिप्रतिष्ठापनविधिरपि सुगमः ।

इत्याचाराङ्गैतत्सूत्रटीकापाठोक्तपदातिभोगस्थलप्रसिद्धबाह्यपरिभोगरूप-भुजिधात्वर्थानाकलनात् जैनशास्त्रोपलभ्यमानाद्यतनमुन्याचारप्रतिपालनप्रयत्ना-धिकतरप्रयत्नसाध्यकेवलोत्सर्गमार्गावलम्बिजिनकल्पिकमुन्याचारसत्त्वेन मांसादि-भक्षणसंवलितजिनकल्पिकमुन्याचारविषयकवर्णनात्यन्तानुचितत्वात् ।

जिनकप्पिया इत्थी न होइ

इत्यादिपाठसूचितजिनकल्पानधिकारभिक्षुक्याचारप्रदर्शकाचाराङ्गसूत्रस्थ-

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा

इत्याद्याऽऽजैनबालप्रसिद्धजिनकल्पिकस्थविरकल्पिकमुन्याचारविषयका-ज्ञानतिमिरनिवारणसन्मार्तण्डमण्डलायमानस्थविरकल्पिकाचारप्रतिपादकसूत्र-विषयकाऽऽर्यदेशानिवासाजायमानजैनगुरुविनयप्रयोज्याबोधविलसितत्वाच्च ।

अथ च तदर्थविषयकशाब्दबोधे तदर्थविषयकबोधजनकतात्वावच्छिन्न-प्रकारतानिरूपितानुपूर्व्यवच्छिन्नविशेष्यताकवक्त्रिच्छाविषयकज्ञानत्वेन कारणत्वस्य भोजनसमयप्रयुक्त'सैन्धवमानये'तिवाक्यार्थबोधविषयताया अश्वत्वावच्छिन्ने वारणाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकरणीयतया तादृशकारणीभूतज्ञानजनकप्रकरणादिना लवणत्वावच्छिन्न-विषयकबोधवद् मांसशब्दतः प्रकरणवशात् स्वयंस्वीकृतफलादिगर्भबोधवद् योग्यस्थले तादृशान्यशब्दजन्यबोधनिष्पत्तिस्वीकारे दोषाभावस्य प्रसिद्धत्वात् तद्विषयकाधिकवर्णनप्रपञ्चेनाऽलम् ।

अपि च सदातनतीर्थङ्करसञ्चारादिपवित्रीकृतमहाविदेहक्षेत्रवर्तमान तीर्थङ्कर-श्रीसीमन्धरप्रणीतदशवैकालिकद्वितीयचूलिकास्थसप्तमगाथायां मुनीनां मद्यमांसभक्षणं सर्वथा निषिद्धम् । तथाहि-

अमज्जमांसासि अमच्छरीय अभिक्खणं निव्विगइगया य

अर्थस्त्वमद्यमांसाशी अमद्यपोऽमांसाशी च, न परसम्पद्द्वेषी, पुष्ट-कारणाभावे निर्गतविकृतिपरिभोगश्चेति; जैनसाधुरिति संबध्यते । अत्र च परिभोगोचितविकृतिनिषेधे अभीक्ष्णमिति विशेषणोपादानवत् मद्यमांसभक्षणनिषेधे तदनुपादानादिना जैनसिद्धान्ते कीदृशी मद्यमांसभक्षणनिषेधव्यवस्थाऽस्ति ? तत् स्वयमेवोह्यम् । येन कदाऽप्येतादृशानर्थाङ्कुरोद्भेदो न भविष्यतीत्याशास्वहे ।

एवमेव सूत्रकृताङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धद्वितीयाध्ययने मुन्याचारप्रस्तावे द्विचत्वारिंशद्दोषरहिताहाराहारित्वादि प्रतिपाद्य

अमज्जमांसासिणो

इति पाठेनैव सर्वथा स्फुटतरकृतं मद्यमांसभक्षणनिषेधमाकलय्य 'मांसाहारिणः प्राचीनमुनय आसन्नि'ति निःशङ्कं वदतां स्वयंकृताङ्गलभाषाविवरण-पुस्तकीयनवाद्रिराममितपृष्ठीयतथाविधमद्यमांसभक्षणनिषेधविस्मरणशालिनां मनो विप्रतीसारमियात् । अपि च विवाहप्रज्ञप्त्याख्य(भगवती)सूत्राष्टमशतकनवमोद्देशके गौतमगणधरपृष्टनैरयिकायुःकार्मणशरीरप्रयोगबन्धकारणं भगवता श्रीमहावीरेण मांसाहारः स्फुटं प्रतिपादितः तथा च तत्पाठः –

णेरइयाउयकम्मासरिरप्पओगबंधेणं भंते ।। पुच्छा - गोयमा ! महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं णेरइयाउयकम्मा-सरिरप्पओगणामाए कम्मस्स उदयेणं णेरइयाउयकम्मासरिरजावप्पओगबंधे ।।

एवमेव स्थानाङ्गसूत्रस्थचतुःस्थानकाख्यचतुर्थाध्ययने मांसभोजनं नरकफलककर्मतयोपवर्णितम् । तथा च तत्पाठः -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति । तं जहा - महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं' इति

कुणिमशब्दस्तु मांसार्थः प्रसिद्ध एव ॥ तथा चौपपातिकसूत्रेपि मांसभक्षणकर्तुर्नरकावाप्तिरुपवर्णिता । तथा च तत्पाठः-

चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववज्जंति । तं जहा-महारंभयाए महापरिग्गहयाये पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं ॥ इति

प्रवचनसारोद्धारेऽपि मधुमद्यमांसनवनीतान्यभक्ष्यतयोल्लिख्य वर्जनीयतया प्रतिपादितानि ।

तथा च तत्पाठः-

पंचुंबरी चउविगइ, हिमविसकरगेयसव्वमट्टी य ।
रयणीभोयणगं चिय, बहुबीयमणंतसंधाणं ॥
घोलवडा वायंगण, अमुणियनामाणि णिफुल्लफलयाणि ।
तुच्छफलं चलियरसं, वज्जह वज्जाणि बावीसं ॥

एवं मद्यमांसादिभक्षणनिषेधवचनामृतपरिषिक्तान्तःकरणनरकादिदुर्गत्व-गामिमुमुक्षवस्तदृत एव मनः समादधते । ये तु लालसादासास्तद्भक्षयन्ति तेषामुभयतः कर्मबन्धनं नरकपतनमनेकश्रवणकटुपरमाधार्मिककृतदुःखोपभोगं चोपवर्णयन्त्युत्तराध्ययनसूत्राणि-

हिंसे बाले मुसावाई माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं सेयमेयं ति मन्नई ॥९॥

कायसा वयसा मत्ते वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ सिसुनागु व्व मट्टियं ॥१०॥ (उ. अ. ५.)

इत्थीविसयगिद्धे य महारंभ-परिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं परिवूढे परंदमे ॥६॥

अयकक्करभोई य तुंदिल्ले चियलोहिए ।
आउयं नरए कंखे जहाऽऽएसं व एलए ॥७॥ (उ. अ. ७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्ताइ तंबलोहाइं तउयाइं सीसगाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥

तुहं पियाइं मंसाइं खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि समंसाइं अग्गिवन्नाइं णेगसो ॥७०॥

तुहं पिया सुरा सीहू मेरओ य महूणिय ।
पाइओ मि जलंतीओ वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥ (उ. अ. १९)

अपि च सूत्रकृताङ्गीयद्वितीयश्रुतस्कन्धषष्ठाध्ययनैकोनचत्वारिंशत्तमगाथा-टीकायां-

मांसस्य हिंसामूलत्वामेध्यत्वरौद्रध्यानास्पदत्वादियावन्नरकगतिसाधन-त्वाभिधानपुरःसरं तद्भक्षयितू राक्षससमत्वसङ्कलितात्मद्रुहत्वमभिधाय मांसशब्द-निर्वचनप्रकाशनपूर्वकप्रेयवध्याश्रयतुच्छक्षणतृप्तिप्राणवियोगान्तरप्रदर्शनेन मांसादनस्य महादोषत्वं निरूप्य कुशला मांसादनाभिलाषरूपमन्तःकरणं न कुर्वन्तीत्यवगमय्य मांसभक्षणे न दोष इति भारत्या अपि मिथ्यात्वमग्रतःकृत्य मांसाशिनां दुर्गतिं तन्निवृत्तानां चेहैवानुत्तमश्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनं चेति प्रदर्शितम् । तथा च तत्पाठः-

"हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौद्रस्य यद्
बीभत्सं रुधिराविलं कृमिगृहं दुर्गन्धि पूयाविलम् ।
शुक्रासृक्प्रभवं नितान्तमलिनं सद्भिः सदा निन्दितं
को भुङ्क्ते नरकाय राक्षससमो मांसं तदात्मद्रुहः ॥१॥

अपि च,

मां स भक्षयिताऽमुत्र, यस्य मांसमिहाऽद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२॥

तथा-

योऽत्ति यस्य च तन्मांस-मुभयोः पश्यताऽन्तरम् ।
एकस्य क्षणिका तृप्ति-रन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥३॥

तदेवं महादोषं मांसदनमिति मत्वा यद् विधेयं तद् दर्शयति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतदेवंभूतं मांसादनाभिलाषरूपं मनोऽन्तःकरणं कुशला निपुणा मांसाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वन्ति, तदभिलाषादात्मनो निवर्तयन्तीत्यर्थः । आस्तां तावद् भक्षणं, वागप्येषा यथा 'मांसभक्षणेऽदोष' इत्यादिका भारत्यभिहितोक्ता मिथ्या, तुशब्दान्मनोऽपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तौ चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथा चोक्तम् -

श्रुत्वा दुःखपरम्परामतिघृणां मांसाशिनां दुर्गतिं
ये कुर्वन्ति शुभोदयेन विरतिं मांसादनस्याऽऽदरात् ।
सद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा संभाव्य यास्यन्ति ते
मर्त्येषूद्भटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु च'' इत्यादि ॥

सूत्रकृताङ्गीयप्रथमाध्ययनद्वितीयोद्देशके परव्यापादितपिशितभक्षण-विषयकदोषाभाववादिमतमनुमत्य प्रतिहतत्वकारणककर्मबन्धत्वेनाऽन्योक्त-सूक्तोपष्टम्भपूर्वकं तिरस्कृतम् । तथा हि –

''यदपि च तैः क्वचिदुच्यते । यथा - परव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताकृष्टाङ्गारदाहाभाववन्न दोष इति, तदप्युन्मत्तप्रलपितवदनाकर्णनीयं, यतः - परव्यापादितपिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याश्च कर्मबन्ध इति । तथा चाऽन्यैरप्यभिहितम् -

अनुमन्ता विशसिता, संहर्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च, घातकश्चाऽष्ट घातकाः'' ॥

एवं स्थानाङ्गसूत्रे दशस्थानकाख्यदशमाध्ययने यत्र मांसादि तत्र विशिष्टाध्ययनादि न कार्यमिति प्रतिपादितम् । तथा च तत्पाठः-

दसविहे ओरालिए असज्जाइए पण्णत्ते - अट्ठि मंसे सोणिए असुइसामंतं मसाणसामंतं चंदोवराए सूरोवराए पडणे रायवुग्गहे उवस्सवस्सअंतो ओरालिए सरीरे ॥

एवमादिनानाविधसिद्धान्तवचनवाचनपरिपूतदर्शनो मांसाद्याहारप्रतिषेधमेव सिद्धान्तानुमतं मन्येतेति निर्विवादमेवेति स्वप्रमादमवधार्य तदुत्थजनमनोविमोहन-बाधकं कोविदप्रसिद्धं प्रमादपरिमार्जनमथनमनुष्ठीयेतेति । शिवम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत् सूरस्य न शीतगोरपि करैर्मोहाभिधानं तमः
क्षीणं तत् सहसा यदीयकथया निर्म्मूलमुन्मूलितम् ।
पापोलूकविनोदरोधनिपुणं सद्युक्तिपादोज्ज्वलं
जीयात् तज्जिनशासनं त्रिजगति स्फीतप्रबोधप्रदम् ॥

श्रमणोपासकापलापप्रकाशः ॥

यस्य मुखस्थितव्रणाङ्कपरम्परेव धर्मप्रचारसुषमापहारोद्यता दुस्तर्कपरम्परा यस्य च दिनमणिप्रभापटलायमानमपि धर्मप्रवचनं न तनूकरोति महामोहप्रवाहसरणिं यत्र चाऽखर्वगर्ववाडवावलीढतया धर्मप्रवाहः क्षणमपि व्यवस्थातुं न क्षमते सोऽयमाङ्ग्लबालायमानः श्रमणोपासको गौर्जरभाषया प्रलपितमाचरन् यदबालं तत्तु खण्डितमेव गुर्जरभाषाभिरेव तैस्तैः ।

यदपि च स्वाभिप्रेतविषयमतङ्गपञ्चास्यायमान 'न मांसभोजी' ति धर्मप्रवचनवाक्यार्थोऽन्यथोपवर्णनीयो मयेति बद्धपरिकरतया पदविद्याचातुरीमात्मनः प्रकाशयमानस्ताच्छील्येऽत्र णिनिरिति मांसभोजनशीलत्वमेव निषिध्यत इत्यर्थवर्णन-रूपाज्ञजनमनोमोहनमहेन्द्रजालं व्यतनुत, तदपि व्याकृतिविलासानभिज्ञानमूलकमेव । सिद्धहेमचन्द्रपाणिनीयव्याकरणस्य - **"अजातेः शीले" "सुप्यजातौ णिनिस्ता-च्छील्ये"** इतिसूत्राभ्यामजातिवाचकोपपद एव ताच्छील्ये प्रत्ययस्य विधीयमानतया प्रकृते मांसशब्दस्य जातिवाचकत्वेन तदप्राप्तेः । अत एव ब्राह्मणानामन्त्रयिता, शालीन् भोक्तेत्यादौ ताच्छील्ये न तादृशप्रत्ययोत्पतिः ।

न च ताच्छील्यप्रत्ययविधायकसूत्रद्वयाप्रवृत्त्या तादृशप्रयोगासिद्धिरिति वाच्यम् । सिद्धहेमचन्द्रव्याकरणे **'ग्रहादिभ्यो णिन्नि'**ति सूत्रे ग्रहादीनामाकृति-गणत्वाङ्गीकारेण तादृशप्रयोगसिद्धेर्निर्विवादत्वात् । अत एव **"अमज्जमांसासि"** इति दशवैकालिकसूत्रप्रयोगोऽमद्यमांसाशी - अमद्यपोऽमांसाशी चेति तद्विवृत्तिश्च भगवद्धरिभद्रसूरिवरोक्ता सङ्गच्छते । अत एव सूत्रकृताङ्गीय-**'अमज्जमांसासिणो'** इतिसूत्रप्रतीकमुपादाय मद्यमांसं नाऽश्नन्तीति दीपिकाकारस्योक्तिरपि सङ्गच्छते ।

यच्च परित्यक्तमांसादनानां प्राचीनराजन्यानामपरिच्छिन्नवणिग्जा-त्याप्यायकत्वमासीदिति श्रमणोपासकेतिनामधारिणोक्तं, तत्र मांसभोजन-प्रतिषेधनियमाभावे परित्यक्तमांसादनानामिति राजन्यविशेषणस्य क उपयोग ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति तु पूर्वापरविरुद्धवक्ता स एव प्रष्टव्य इति केचित् ।

अपरे तु श्रमणोपासकवाक्यं पूर्वापरविरुद्धमपि तदिष्टप्राक्कालिक-जातिबन्धनाभाववन्तो यथा मांसाहारत्यागिनः स्वजातिं प्रवेशयन् तथाऽनार्यदेश-पर्यटनादिनाऽभिमतमांसभक्षणानां जातौ सङ्ग्रहीतारः । श्रीमद्धेमचन्द्रसूरिवराधिगत-जैनधर्मक्षेत्रपालसविधशरावस्थमांसस्थापकमार्गणपुरःसरशासितनडुपुरसामन्तक-गुरुपदेशवर्जितजैनधर्माङ्गीकारप्राक्कालभक्षितमांसस्मारकघृतपूरककुमारपालचरितं विस्मरन्तो हितं नाऽनुरुध्यन्त इति सूचयितुं कल्पत इति व्याचक्षत। इति शम् ॥

यस्योद्दामप्रमाणप्रवचनतरणिप्रौढभासा विलीने
पाखण्डध्वान्तजाले प्रसरति भुवने धर्मपद्मप्रबोधः ।
लीलावासो गुणानां जनकलुषमषीलेपलोपप्रसक्तो
जीयाच्छ्री**वृद्धिचन्द्रो**ऽतुलगुणमहिमा श्रीलमुक्त्या समेतः ॥

* * *

नाँलीकेंष्वङ्कचन्द्रैरधिगतगणने वत्सरेऽवन्तिपस्य
मासीषेऽमातिथौ यत्स्खलितमिह बुधैर्यन्नतः शोधनीयम् ।
इत्यभ्यर्थ्य प्रवीणान् कलुषगदभिषक्पार्श्वनाथप्रसादा-
न्नेम्यानन्दप्रणीता प्रमदयतु **परीहार्यमीमांसिके**यम् ॥

॥ ग्रन्थोऽयं समाप्तः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर्मन जेकोबीनो पत्र

प्रो. हरमन जेकोबी

श्रीश्रीश्री१०५श्रीमुनिनेमिविजयानन्दसागरावाचार्यशिरोमणी प्रति बोषा-नगरवास्तव्यस्य याकोबिनाम्नः संस्कृताध्यापकस्य धर्मलाभपुरःसरं विज्ञप्तिरियम्।

श्रीमद्भ्यां परिहार्यमीमांसाख्यपत्रे मांसमत्स्यभक्षणनिषेधो भूयिष्ठजैनागम-सम्मतोऽखिलजैनमुनिसदाचाराङ्गीकृतश्चेति यद् बहुसूत्रप्रपञ्चेन निरणायि तत्र सर्वेषामैकमत्यमेव। अस्माभिस्तु यथेदानीन्तनानां जैनानां मांसभक्षणं निषिद्धं, न तदा(था) सर्वदाऽऽसीदिति प्रत्यपादि। तथा हि- अरिष्टनेमिविवाहावसरे तच्छ्वशुरेणोग्रसेननाम्ना महाराजेन विवाहोत्सवोचितान्नसम्पादनार्थं प्रभूता मृगाः पञ्जरबद्धा अस्थापिषतेत्युत्तराध्ययनसूत्रस्थद्वादशाध्ययने श्रूयते। उग्रसेनादीनां त्वार्हतत्वं तीर्थकरसम्बन्धादनुमीयते। एवं च तेषां मांसभक्षणं न निषिद्ध-मासीदिति प्रतिभाति।

ननु गृहस्था एव ते, न च गृहस्थाचारनिमित्तको विवादो, भिक्षूणामा-चारस्याऽऽचाराङ्गेऽधिकृतत्वादिति चेत् - सत्यम्। किं तर्हि? जैनमुनि-समाचारस्याऽपि न सर्वदैकभावाश्रयत्वमासीदिति पूर्वमेवाऽस्माभिरुक्तम्। अद्यतनानां हि जैनमुनीनां स्थविरकल्पनियमः। पूर्वं तु जिनकल्पः प्रववृते। दृष्टान्तत्वेन मया जिनकल्प उदाहृतः, न तु आचाराङ्गसूत्रे जिनकल्पः प्रस्तुत इति विवक्षया।

एवं समाचारस्याऽन्यथाभावमापद्यमानत्वदर्शनात् कदाचित् कस्मिंश्चित् पूर्वसमये मांसभक्षणमपि नाऽत्यन्तं निषिद्धमासीदित्यविरुद्धा कल्पना। एतेन न्यायेनाऽऽचाराङ्गसूत्रस्थितसूत्रस्याऽर्थोऽनुसन्धातव्यः।

किञ्च, मांस-मत्स्यशब्दयोः पिशित-मीनातिरिक्तपदार्थे न वाचकत्वम्। यत्तु **'मत्स्या चक्राङ्गी शकुलादिनी'**ति श्रीहेमचन्द्रविरचितकोशे मत्स्याशब्दस्य वनस्पतिविशेषे रूढत्वदर्शनात् पूर्वोक्तसूत्रस्थमत्स्यशब्दोऽपि वनस्पतिविशेषार्थं गमयतीत्युच्यते, तदसमीचीनमेव। स्त्रीत्वेनोद्दिष्टस्य मत्स्याशब्दस्य वनस्पति-विशेषार्थाभिधायित्वात्, पूर्वोक्तसूत्रस्थितस्य **मच्छे**णेतिशब्दस्य पुंस्त्वस्या-ऽसन्दिग्धत्वात्।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

यदि च मत्स्यशब्दस्य मुख्यार्थव्यतिरेकेणाऽर्थान्तराभिधायित्वं स्यात् तदा तस्य शब्दार्थान्तरस्य बाधकमेव मांसशब्दस्य तेन सह सामानाधिकरण्यं स्यात् । **'अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्याऽन्यस्य सन्निधि'**रिति शब्दार्थस्याऽनवच्छेदे सन्निधेरेव विशेषस्मृतिहेतुत्वस्मरणात् । इत्थं मांसशब्दसन्निधेर्मत्स्यशब्दस्याऽत्यन्तविजातीयवनस्पतिविशेषार्थाभिधा बाध्यते मीनपर्यायत्वं च सिध्यति ।

रूढ्यभावेऽपि मत्स्यशब्दो लक्षणयाऽर्थान्तरं नीयत इति चेत् - न, शक्यसम्बन्धाभावात् प्रयोजनाभावाच्च । न हि मीनार्थ-फलविशेषार्थयोः कश्चित् सम्बन्धः प्रतीयते । न च किञ्चित् प्रयोजनमुपलभ्यते येन वनस्पतिविशेषार्थो मीनपदार्थसङ्केतितमत्स्यशब्देनोच्येतेति ।

यच्च - **भुजिरत्र बाह्यपरिभोगार्थे, नाऽभ्यवहारार्थे वर्तत** - इत्युच्यते, तदप्यसत्; प्रकरणवशाद् भुजिधातोरभ्यवहारार्थस्याऽऽवश्यकत्वात् । भोजनपान-विधिनिषेधौ हि आचाराङ्गसूत्रस्य दशमोद्देशके प्रस्तुतौ न तु चिकित्सादि। अन्यच्च, मत्स्यशब्देन सह सम्प्रयुक्तस्य भोजनशब्दस्याऽभ्यवहारवाचकत्वाभ्युपगमे तस्यैव भोजनशब्दस्य मांसशब्देन सह सम्प्रयुक्तस्य स एवाऽर्थोऽवश्यमभ्युपेतव्यः ।

न हि पद्मावतीं काममञ्जरीं वा वृणुष्वेति वाक्ये पद्मावतीकर्मक-वरणक्रिया-काममञ्जरीकर्मकवरणक्रिययोरेकपदेनाऽभिहितयोः स्वीकुरुष्वेत्यव-गुण्ठयेति भिन्नार्थत्वमुपपद्यते । श्लेषेण तत् स्यादिति चेत् - न, श्लिष्टपदप्रयोगस्य काव्यविषये बाहुल्येन दर्शनात् न तु जिनागमे ।

अपि च, मांसभोजनस्य बाह्यपरिभोगतया कल्पने श्रीमन्तौ प्रष्टव्यौ-बाह्यपरिभोगे मांसस्य परिव्यापादितपिशितभक्षण इव प्रयोक्तुर्जीवहिंसा भवति वा नवेति ? अस्ति चेत्, प्रयोक्तुः कर्मबन्धप्रसङ्गात् सूत्रस्थितविधेर्दोषत्वं दुष्परि-हरणीयम्। अथ नाऽस्ति, आन्तरप्रयोगेऽपि सा न भवतीति दिक् ।

एवं सति मत्स्य-मांस-भोजनपदानां fish meat eat इत्याङ्ग्लदेशीय-पदैरस्मन्मतेऽवश्यमेवाऽनुवादः कर्तव्यः । यदि चाऽस्मदज्ञातयुक्त्या प्रस्तुतमागधीय-पदानामर्थान्तरकल्पना शक्यक्रिया तदा तयैव सैव तत्प्रतिबिम्बभूताना-माङ्ग्लदेशीयपदानामप्यध्येतृभिः क्रियतामिति ।

यदि चाऽऽचाराङ्गसूत्रानुवादस्य द्वितीयावृत्तिः प्रकाश्यते तदा श्रीमद्भ्यां दर्शितः सूत्रार्थष्टिप्पन्यामुदाहारिष्यते इति प्रागेवाऽस्माभिः प्रतिज्ञातमिति विज्ञप्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रो. जेकोबीना पत्रनो उत्तर

मुनि नेमिविजय-मुनिआनन्दसागर

॥ अर्हं ॥

राजनगरतो मुनिनेमविजयानन्दसागराभ्यां ज्ञानाभ्यासविलासवासितान्तः-करणान् संस्कृताध्यापकान् याकोबिप्रख्यान् प्रति दत्तो धर्मलाभो विलसतुतराम्।

भवतां समागतं परीहार्यमीमांसाप्रत्युत्तरं श्राद्धखीमजीहीरजीकायानी-समाख्यातं प्रति चिरकालेन समालभ्य तत्प्रत्युत्तरविसर्जनं विधीयते। तथा हि - भूयिष्ठजैनागमसम्मतमद्य-मांसभक्षणनिषेधव्यवस्थायां यदैकमत्यं प्रादर्शि तन्मर्मज्ञोचितम्। "किन्तु" यत् प्राचीनानां मद्य-मांस-भक्षणस्य निषेधो न सर्वदाऽऽसीदिति प्रतिपादनार्थमुग्रसेनं दृष्टान्तत्वेनोपन्यस्य तदादीनामार्हतत्वं तीर्थकरसम्बन्धादनुमितं, तन्न - तीर्थकरसम्बन्धिनो जैना एवेत्यत्र विनिगमनाविरहात्, शान्तिनाथादितीर्थसृट्सम्बन्धिषु जैनभिन्नत्वोपलब्धेः। अधुनातनजैनानामपि स्वभिन्नसम्बन्धदर्शनाच्च। केनचिदाचरितस्य समुदायाचरणानुमानेऽकारणत्वाच्च। उग्रसेनकुमारीपरिणयावसरबद्धपशुसमजारटिश्रवणचकितपृष्टसारथिनिवेदित-तत्कारणकतदनुभाविमृगवधप्रतिषेधकृज्ज्ञानत्रयविभूषितभगवन्नेमिचरित्रचमत्कृति-स्वादननैपुण्येनाऽऽर्हतानां मांसभक्षणपरीहारानुमानस्यैव दार्ढ्याच्च।

यच्च, समाचारान्यथात्वप्रपञ्चनपाटवेन प्राचीनस्थविरकल्पिकमुनिकर्तृक-मांसभक्षणानुमानेऽपि न क्षतिरित्युच्यते - तदपि रभसात्। प्राचीनाद्यतनस्थविर-कल्पिकमुनिकर्तृकभक्षणाचारस्यैकत्वात्। अद्यतनानां मुनीनां मद्यमांसभक्षणाचारस्य सर्वथाभावात्। जिनकल्पिकानां तु तद्भक्षणं न सम्भवत्येवेति पूर्वमेव विशदी-कृतम्।

यदपि च, तिक्तेत्यादिकोशबलेनोपलब्धावपि वनस्पतिनिष्ठवाच्यतायाः स्त्रीत्वेनोद्दिष्टो मत्स्यशब्दोऽत्र सूत्रे तु पुंस्त्वेनेति मत्स्यशब्दस्य न मीनार्थातिरिक्त-वाचकत्वमित्याद्युक्तं, तदप्यसत् - चण्ड-सिद्धहेमचन्द्र-पाणिनीयव्याकरणस्थ-"**क्वचिद् व्यत्ययः**" - "**लिङ्गमतन्त्रं**"- "**लिङ्गं व्यभिचार्यपी**"तिसूत्रैर्लिङ्ग-व्यत्ययस्याऽपि सद्भावात्। अत एव तत्र तत्र लिङ्गव्यत्ययेनोक्तिरपि सङ्गच्छते।

यच्चोक्तं - यदि मत्स्यशब्दस्य मुख्यार्थव्यतिरेकेणाऽर्थान्तराभिधायित्वं स्यात् तदा तस्याऽर्थान्तरस्य बाधकमेव मांसशब्दस्य तेन सह सामानाधिकरण्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यादित्यादि-तदपि न; मांसशब्दस्य स्वयंस्वीकृतफलगर्भविशेषार्थस्याऽस्मरणात् । एतेनाऽर्थः **प्रकरणमित्यादिसिध्यत्यन्तमपास्तमवसेयम्** । एवं शक्यार्थेनैव निर्वाहे लक्षणाविषयकचर्चाया अनुदय एव ।

यच्चोक्तं - दशमोद्देशके भोजनपानयोः प्रस्तुतत्वाच्चिकित्साया अभावाच्च न भुजिर्बाह्यपरिभोगार्थो गृह्यते - तदप्यापाततः, अत्रैव पिण्डैषणाप्रकरणेऽप्रस्तुतस्याऽपि विहारस्य कथञ्चित् प्रसक्तेरविरुद्धत्ववन्मांसकर्मकबाह्यपरिभोगार्थस्याऽप्यविरुद्धत्वादिति विभावनीयम् ।

यच्च - पद्मावतीं काममञ्जरीं वा वृणुष्वेत्यत्रेव सकृदुच्चरितो भुजिर्नाऽभ्यवहारं बाह्यपरिभोगं चाऽर्थं वक्तुं शक्त इत्यादि - तदप्यनुचितम्; एकस्यैव बाह्यपरिभोगार्थस्य टीकाकृता कथनात् ।

यश्च मर्मजिज्ञासोर्भवतो मांसभक्षण-लेपनदोषतारतम्यप्रश्नस्तत्रेदं विचार्यते-मांसभक्षणं बहुश्रुतविरोधेनाऽऽसक्तिविशेषजनकत्वेन विपाकदारुणत्वेन हिंसामूलकत्वेन च सुतरां परिहार्यम् । अन्यत्तु न सर्वथा तथाविधमिति लूतादिविषमरोगसद्भावापरिहारे सदोषमपि सद्वैद्योपदेशतो न विरुध्यत इत्यादि स्वयमेव **'आयं वयं तुलिज्जा'** इत्यादिसिद्धान्तवचनबलेनोहनीयमिति ।

दृष्टान्तत्वेन जिनकल्पोपादानं भवद्भिः कृतमप्याङ्ग्लभाषावैदग्ध्यदोषतः कायानीकृतभाषान्तरानुसरणतो न तथाऽवगतमिति नाऽस्मद्दोष इत्यतः प्रहितमुद्रितपत्रतोऽवगन्तव्यम् ।

एतावता मूल एव पुनरावृत्तेः प्रागपि च सत्यार्थप्रकाशनेनाऽनाग्रहित्वप्रसिद्धिर्भवतां भवेदित्याशास्वहे ।

एनं विचारमवधार्योचितकरणीयाय भवते ब्रूवो यदि काचिच्छङ्का भवत उदेष्यति तर्ह्यावां भवत्प्रहितं पत्रं तूर्णमवाप्य तद्विनोदाय यतेवहीति ।

पत्रं तु नीचैस्तने स्थाने प्रैष्यम्-

तत्र शिरोनाम — 'नेमिविजयानन्दसागरौ'

स्थानं — पांजरापोल
जैनतत्त्वविवेचकसभा-
मन्त्री-केशवलाल अमथाभाई
अहमदाबाद ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलधारि श्रीराजशेखरसूरिकृता

स्याद्वादकलिका ॥

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

स्याद्वाद दर्शन एटले जैन दर्शन. स्याद्वाद ए समुद्र जेवुं एक सर्वांगी विचारदर्शन छे, जे नदीओ जेवां विविध वा अनेक एकांगी दर्शनोने पोतामां समावी लेवानी क्षमता राखे छे. परन्तु तेना मर्मने पकडी न शकनार के पछी पकडवा माटे अनिच्छुक विद्वानोए तेने 'संशयवाद', 'खीचडो' तथा तेवां अनेक नामो वडे ओळख्यो छे. स्याद्वाद सर्व दृष्टिओना स्वीकार तेमज समन्वयमां माने छे. आ वात एकांगी दृष्टिओने मान्य नथी बनती. "आ पण खरुं अने ते पण खरुं ? अथवा ते पण खोटुं अने आ पण खोटुं ? - आ केम बने ? केम मनाय ? साचुं तो कोई एक ज वानुं होय !" आ छे एकांगी के निरपेक्ष दृष्टि. आमां सापेक्षभावने कोई ज अवकाश नथी होतो. आथी ज सर्जाय छे वाद-विवादरूप मुठभेड.

आ मुठभेडमां दरेक दर्शने पोतानुं मण्डन अने अन्यनुं खण्डन कर्युं, तो साथे साथे, ए सौए 'स्याद्वाद'नुं तो एकस्वरे खण्डन ज कर्युं. आनो जवाब आपवानुं अनिवार्य बन्युं त्यारे स्याद्वादवादीओए पण खण्डन-मण्डननी प्रक्रिया तथा परिभाषा अपनावीने अे मुठभेडमां झुकाव्युं. मूळे तेमनो आशय कोई दृष्टिने के विद्वानने ऊतारी पाडवानो नहि हतो; पण तेमनी दृष्टिमां रहेल निरपेक्ष एकान्त मान्यताने तोडवानो ज हतो. परन्तु कालक्रमे शास्त्रोनी कुस्ती करतां करतां, तेओने पण, सौना नकारात्मक वलणनो चेप लाग्यो होय, तेम कल्पी शकाय छे.

एकान्त दर्शनोनुं खण्डन अने अनेकान्तनुं मण्डन करनारा अनेक जैन आचार्यो थया छे, तेमां आ. राजशेखरसूरिनुं नाम पण आगली हरोळनुं छे. मूळे पोते समन्वयवादी होवानुं तो, तेमणे 'षड्दर्शनसमुच्चय' जेवो समन्वयात्मक ग्रन्थ रच्यो छे ते थकी ज, पुरवार थाय छे. छतां वादीओना निरंकुश आक्रमणने खाळवा तेमणे 'स्याद्वादकलिका' जेवा ग्रन्थनुं निर्माण करवुं पड्युं होय तो ते बनवाजोग छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'स्याद्वादकलिका'नी रचना करवानो मुख्य आशय प्रगट करतां कर्ता कृतिना छेल्ला-३९मा पद्यमां लखे छे :

"द्रव्यषट्केऽप्यनेकान्त-प्रकाशाय विपश्चिताम् ।
प्रयोगान् दर्शयामास सूरिश्रीराजशेखरः ॥"

अर्थात् विविध दर्शनोने सम्मत छ (अथवा ओछां-वधतां) द्रव्योमां पण अनेकान्तवाद छे ज, ते वात विद्वानोने समजाववा माटे मारो आ प्रयास छे.

जोके मारी कल्पना एवी छे के अहीं **'द्रव्यषट्के'** ने बदले **'दृष्टिषट्के'** पाठ होवो घटे. अर्थात् छए दृष्टि-दर्शनमां 'अनेकान्त'नो प्रकाश प्रसरावववानी आ मथामण छे, एम स्पष्ट थई जशे.

हवे आपणे छ अथवा सर्व मतोमां स्याद्वाद केवी रीते संभवे छे, ते स्याद्वादकलिकाना टेकेटेके जोईए : श्रीकण्ठ (ईश्वर) जो कूटस्थनित्य होय तो तेमां सिसृक्षा (सर्जनेच्छा) अने संजिहीर्षा (संहारेच्छा)- एम बे विरोधी इच्छाओ कई रीते संभवे ? अर्थात् जो ईश्वरमां बे विरुद्ध इच्छाओ संभवती होय तो ते ज 'स्याद्वाद' छे. (श्लोक. २)

३ गुणात्मक, ३ वेदात्मक, पृथ्वी वगेरे ८ गुणात्मक महेश्वर होय, अने ते एक ज होय, तो ते स्याद्वाद विना न बने. (३).

विष्णु नित्य एकरूपी होय, छतां तेना दश विभिन्न अवतारो होय अने तेमां दरेकमां तेमना वर्ण, शरीर, कर्म नोखां होय तो ते स्याद्वाद विना केम बनी शके ? (४)

शाक्तो शक्तिनां विभिन्न नामो, अवस्थाभेदे स्वीकारे, तो ते पर्याय-परिवर्तन विना शक्य नथी. (५).

बौद्धमते ज्ञान निरन्वयनाश पामे छे ते छतां जातिस्मरण थाय ज छे, ते स्याद्वादनो ज स्वीकार छे (६-७)

संसारमां भमता एक ज जीवनी सुखी-दुःखी के मनुष्य-देवादिरूप विभिन्न पर्यायो; परमाणुओमां गति-स्थिति तथा भिन्न भिन्न वर्णादि धर्मो; एक ज भासता पुद्गलस्कन्धोमां वर्तती वर्णादिनी विविधता, आ बधुं अनेकान्तने स्वीकार्या विना केम संभवे ? (८-९)

शब्द-पदार्थमां पण तार-तारतर वगेरे भेदो स्याद्वादना ज साधक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणाय. (१०).

एक ज पद के वाक्यमां विविध लिङ्गो होय; आ बधुं स्याद्वाद थकी ज सिद्ध थाय. (११-१२).

जैनमते 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' त्रणेथी युक्तने ज सत् पदार्थ गणवामां आवे छे. स्याद्वादनी आ मर्यादा तमस् अने छायामां, आलोकनी जेम ज घटे छे (१३-१४). कर्म ए पण पुद्गल छे, उत्पादादियुक्त छे, उपघात अने अनुग्रह जेवा विरुद्ध धर्मो तेमां पण छे, जे स्याद्वादमुद्रा ज छे (१५).

चित्त (मन) पण पौद्गलिक छे, मैत्री आदि प्रमोदकर अने काम-क्रोधादि क्लेशकर-आवा परस्पर विरुद्ध भावोयुक्त छे; आ परिणति-वैचित्र्यने कारणे मन पण त्रयात्मक सिद्ध थाय छे. (१६). (नित्य मनाता) धर्म, अधर्म अने आकाश जेवां द्रव्यो पण, पुद्गल अने जीवोना संयोग-विभागवाळा थतां होई नित्यानित्य होवानुं सिद्ध थाय ज छे; ए ज छे स्याद्वाद (१७). तो अलोकाकाशमां पण संयोग-विभागनी शक्ति तो होय ज; ते शक्तिनी अपेक्षाए ते पण त्रयात्मक बने छे (१८).

कालद्रव्य, चाहे नैश्चयिक हो के व्यावहारिक काल, तेमां पण पुद्गलपरावर्तनने कारणे स्वभावभेद सिद्ध थाय ज छे (१९). अथवा व्याकरणनो 'क्त्वा' प्रत्यय, एक ज कर्तानी बे क्रिया वखते, पूर्व काल अने पर काल-एवी भिन्नता पुरवार करे छे, जे काल द्रव्यने नित्यानित्य सिद्ध करे छे (२०).

'पीयमानं मधु मदयति' आ वाक्यमां 'मधु' पद बे क्रियापदो/क्रियाओ साथे लागु पडे छे; स्याद्वाद विना आ क्यांथी संभवशे ? (२१).

अनवस्था, संशय, व्यतिकर, साङ्कर्य, विरोध वगेरे दूषणो अन्य वादीओ भले आपता होय, पण 'स्याद्वाद'ने ते स्पर्शे तेम नथी. केमके एकान्त 'नित्य' पक्षमां, एकान्त 'अनित्य' पक्षमां, परस्पर निरपेक्ष 'नित्य-अनित्य' पक्षमां - एम त्रण पक्षोमां ए दूषणो लागु पडे खरां; परंतु परस्पर सापेक्ष एवो 'नित्यानित्य' पक्ष तो चोथो विलक्षण पक्ष छे; तेमां ए दूषणो कोई वाते लागतां नथी (२२-२३).

एक ज पदार्थमां परस्पर विलक्षण एवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श जेम रही शके छे, तेम उपाधिना भेदे बोधनो भेद, तेना विषे, थाय तो कोई विरोध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नथी (२४).

पर्यायथी पूर्वरूपे विनाश, कोई नवा रूपे उत्पत्ति, अने ते बन्ने स्थितिमां द्रव्यरूपे स्थिर होवुं, आ ज छे अनेकान्तवाद (२५). स्वकीय द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव वडे सत्त्व, परकीय द्रव्यादि वडे असत्त्व; ए ज प्रकारे द्रव्य अने पर्यायथी भेद-अभेद-,नित्य-अनित्य वगेरे स्वीकारवा, ते छे स्याद्वाद (२६).

पदार्थ अवयवोनी अपेक्षाए अनेकात्मक होय अने अवयवीनी अपेक्षाए एकात्मक; प्रमाणसप्तभङ्गी प्रमाणे अनभिलाप्य, तो नयसप्तभङ्गी प्रमाणे अभिलाप्य बने; आ स्याद्वाद-रहस्य छे (२७).

विजातीयथी व्यावृत्ति, सजातीयनी अनुवृत्ति, आ रीते व्यक्ति अने जाति बन्ने एकमेकमां विलीन छे; एकान्तवाद स्वीकारो तो तुरत दूषण आवी लागशे (२८).

घडो नथी अन्वय के नथी व्यतिरेक; ते तो मृद्-माटीथी भिन्न पण छे अने तेनी साथे तेनो संसर्ग पण छे, एटले भेदाभेदात्मक घडो ए स्वतन्त्र जाति (जात्यन्तर) ज छे (२९).

३०, ३१, ३२ - आ त्रण पद्यो स्याद्वादनी सिद्धि माटे प्राचीनो द्वारा प्रयोजाएलां ३ उदाहरणो रूप पद्यो छे, जे उद्धरणात्मक छे. तो ३३-३४-३५ पद्यो स्याद्वादकलिकाकारे पोते ज रचेली 'जिनस्तुति' नामक के स्वरूपी कृतिमांथी उद्धृत करेलां पद्यो छे; तेनी पद्धति हेमचन्द्राचार्यकृत 'वीतरागस्तव' गत 'चित्रमेकमनेकं च, रूपं प्रामाणिकं वदन् । यौगो वैशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥' इत्यादि श्लोकोनी शैलीने अनुसरे छे, अने क्रमशः बौद्ध, कणाद तथा अक्षपाद, अने कपिल - आ ४ आचार्योनो प्रतिक्षेप अथवा तो ते लोको द्वारा केवी रीते स्याद्वादनो स्वीकार थयो छे, ते दर्शावे छे.

एकान्तवादमां वस्तु अर्थक्रियाकारी नथी बनती; तेथी वस्तु अवस्तु बनी रहे छे; अने ए दोषो अनेकान्तवादमां नथी लागता (१६). तो, पोते पोताने पोताना वडे जाणे छे, जेम सर्प पोताने पोता वडे वींटळाय तेम; एक ज पदार्थमां अनेक सम्बन्धो संभवे छे; आ छे **स्याद्वादनी दीपिका**नुं स्वरूप (३७). वैदक, ज्योतिष अध्यात्म आदि विविध शास्त्रोनो जाण मनुष्य ज सर्वत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त अनुभवी/जोई शके छे (३८). ३९मी कारिकामां कर्ता पोतानुं नाम दर्शावीने समापन करे छे.

* * *

विक्रमना १४मा शतकमां थयेला हर्षपुरीय मलधारगच्छीय आचार्य **श्रीराजशेखरसूरिजी**नी आ नानी पण बलिष्ठ रचना छे. सं. १४६५मां लखायेली **'स्याद्वादमञ्जरी'**नी हस्तप्रतिना प्रान्त भागमां लखायेली आ रचना, त्यां **'स्याद्वादकलिका'** एवा नामे ओळखावाई छे, एटले अहीं पण ते ज नामे ओळखावी छे. बाकी कृतिना ३७मा पद्यमां तेनुं नाम अपायुं छे - **'स्याद्वाददीपिका'**. 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' (मो.द.देसाई, ई.स. १९३३, पृ. ४३७), पारा ६४२) अनुसार आ. राजशेखरसूरिए चतुर्विंशतिप्रबन्ध, कौतुककथा, स्याद्वादकलिका-स्याद्वाददीपिका, रत्नाकरावतारिका पञ्जिका, न्यायकन्दलीपञ्जिका, षड्दर्शनसमुच्चय आदिनी रचना करी छे.

आमां स्याद्वादकलिका अने स्याद्वाददीपिका बे नामो एक ज रचनानां होवानुं अनुमान थाय छे. केमके कृतिमां 'दीपिका' नामे प्रसिद्ध रचनाने ज पुष्पिकामां 'कलिका' एम ओळखवामां आवी लागे छे.

'जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास' (ही. र. कापडिया, खण्ड १, पृ. ८६)मां कर्तानी रचनाओनी यादीमां पण 'स्याद्वादकलिका' छे, 'दीपिका'नो उल्लेख नथी. आथी पण उपरोक्त धारणा पुष्ट थाय छे.

आ रचना प्रगट थई छे के केम तेनी जाण नथी. प्रायः अप्रगट छे तेवी धारणाथी अत्रे आपेल छे.

स्याद्वादकलिका ॥

षड्द्रव्यज्ञं जिनं नत्वा स्याद्वादं वच्मि तत्र सः ।
ज्ञानदर्शनतो भेदा-भेदाभ्यां परमात्मसु ॥१॥

सिसृक्षा सञ्जिहीर्षा च स्वभावद्वितयं पृथग् ।
कूटस्थनित्ये **श्रीकण्ठे** कथं सङ्गतिमङ्गति ? ॥२॥

गुणश्रुतित्रयोर्व्यादि-रूपताऽपि **महेशितुः** ।
स्थिरैकरूपताख्याने वर्ण्यमाना न शोभते ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीनादिष्ववतारेषु पृथग् वर्णाङ्ककर्मताः ।
विष्णोर्नित्यैकरूपत्वे कथं श्रद्धधति द्विजाः ॥४॥

शक्तेः स्युरम्बिका-वामा-ज्येष्ठा-रौद्रीति चाऽभिधाः ।
दशाभेदेन **शाक्ते**षु परावर्त्तं विना न ताः ॥५॥

चितो निरन्वये नाशे कथं जन्मान्तरस्मृतिः ।
ताथागतमते न्याय्या न च नास्त्येव सा यतः ॥६॥

"इत एकनवते कल्पे शक्त्या मे पुरुषो हतः ।
तेन कर्मविपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः ॥७॥"

सुख-दुःख-नृ-देवादि-पर्यायेभ्यो भवाङ्गिषु ।
गतिस्थित्यन्यान्यवर्णादि-धर्मेभ्यः परमाणुषु ॥८॥

वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शै-स्तैस्तैर्भिन्नाक्षगोचरैः ।
स्यात्तादात्म्यस्थितैः स्कन्धे-ष्वनेकान्तः प्रघुष्यताम् ॥९॥

प्रतिघातशक्तियोगा-च्छब्दे पौद्गलिकत्ववित् ।
भेदैस्तारतरत्वाद्यैः स्याद्वादं साधयेद् बुधः ॥१०॥

तर्क-व्याकरणा-ऽऽगम-शब्दार्थालङ्कृति-ध्वनि-च्छन्दः ।
एकत्र पाद-वाक्ये दृष्टविभागं युतं सर्वम् ॥११॥

स्वरादिवर्णस्यैकस्य संज्ञास्तास्ताः स्वकार्यगाः ।
शब्दे लिङ्गादिनानात्वं स्याद्वादे साधनान्यहो ! ॥१२॥

सादित्वान्नाशित्वा-दालोकतमोऽभिधानराशियुगात् ।
निजसामग्र्योत्पादा-न्नालोकाभावता तमश्छाये ॥१३॥

समाहारैकत्वात् तमश्छाययोरित्यर्थः ॥

चाक्षुषभावाद् रसवीर्यपाकतो द्रव्यता(त)स्त्वनेकान्तः ।
परिणामविचित्रत्वा-दन्नाप्यालोकवत् सिद्धः ॥१४॥

उपघातानुग्रहकृतिकर्मणि पौद्गलिकता विषपयोवत् ।
तत्तत्परिणतिवशत-स्तत्रोत्पादव्ययध्रुवता ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैत्राद्यैर्मुज्जनकं कामक्रोधादिभिः प्रयासकरम् ।
परमाणुमयं चित्तं परिणतिचैत्र्यात् त्रिकात्मकता ॥१६॥

धर्माऽधर्म-लोकखानां तैस्तैः पुद्गलजन्तुभिः ।
स्यात् संयोगविभागाभ्यां स्याद्वादे कस्य संशयः ॥१७॥

अलोकपुष्करस्यापि त्रिसंवलिततां मुणेत् ।
तत्तत्संयोग-वीभाग-शक्तियुक्तत्वचैत्र्यतः ॥१८॥

व्यावहारिककालस्य मुख्यकालस्य वाऽस्तु सा ।
तत्तद्भावपरावर्त्त-स्वभावबहुलत्वतः ॥१९॥

एककर्तृकयोः पूर्व-काले क्त्वाप्रत्ययः स्थितः ।
स एव नित्यानित्यत्वं ब्रूतेऽर्थे चिन्तयाऽस्तु नः ॥२०॥

'पीयमानं मदयति मध्वि'त्यादि द्विगं पदम् ।
स्याद्वादभेरीभाङ्कारै-र्मुखरीकुरुते दिशः ॥२१॥

अनवस्था-संशीति-व्यतिकर-सङ्कर-विरोधमुख्या ये ।
दोषाः परैः प्रकटिताः स्याद्वादे ते तु न राजेयुः ॥२२॥

नित्यमनित्यं युगलं स्वतन्त्रमित्यादयस्त्रयो दूष्याः ।
तुर्यः पक्षः शबलद्वयीमयो दूष्यते केन ? ॥२३॥

एकत्रोपाधिभेदेन बोधा(ध?)द्वन्द्वं क्षणे क्षणे ।
न विरुद्धं रूप-रस-स्थूला-ऽस्थूलादिधर्मवत् ॥२४॥

विनाशः पूर्वरूपेणोत्पादो रूपेण केनचित् ।
द्रव्यरूपेण च स्थैर्य-मनेकान्तस्य जीवितम् ॥२५॥

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः स्वैः सत्त्वमपरैः परम् ।
भेदाभेदाऽनित्यनित्यं पर्याय-द्रव्यतो वदेत् ॥२६॥

अंशापेक्षमनेकत्व-मेकत्वं त्वंश्यपेक्षया ।
प्रमाण-नयभङ्ग्या चा-ऽनभिलाप्याऽभिलाप्यते ॥२७॥

विजातीयात् सजातीयाद् व्यावृत्तेरनुवृत्तितः ।
व्यक्ति-जाती भणेन्मिश्रे एकान्ते दूषणे क्षणात् ॥२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नान्वयः स हि भेदित्वा-न्न भेदोऽन्वयवृत्तितः ।
मृद्भेद-द्वयसंसर्ग-वृत्ति जात्यन्तरं घटः ॥२९॥

"भागे सिंहो नरे भागे, योऽर्थो भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥३०॥"

"घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥३१॥"

"पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् ॥३२॥"

अवोचाम च **जिनस्तुतौ**-

"जन्यत्वं जनकत्वं च क्षणस्यैकस्य जल्पता ।
बौद्धेन युक्ता(क्ति?)मुक्तीश ! तवैवाऽङ्गीकृतं मतम् ॥३३॥

प्रमाणस्यापि फलतां फलस्यापि प्रमाणताम् ।
वदद्भ्यां **कणभक्षाक्षपादा**भ्यां त्वन्मतं मतम् ॥३४॥

एकस्यां प्रकृतौ धर्मौ प्रवर्तन-निवर्त्तने ।
स्वीकृत्य **कापिलाचार्या**-स्त्वदाज्ञामेव बिभ्रिरे ॥३५॥"

अनर्थक्रियाकारित्व-मवस्तुत्वं च तत्कृतम् ।
एकान्तनित्यानित्यादौ जल्पेन्मिश्रे त्वदोषताम् ॥३६॥

आत्मानमात्मना वेत्ति स्वेन स्वयं वेष्टयत्यहिः ।
सम्बन्धा बहवश्चैकत्रेति **स्याद्वाददीप(पि)का** ॥३७॥

वैद्यक-ज्योतिषा-ऽध्यात्मा-दिषु शास्त्रेषु बुद्धिमान् ।
विष्वग्(क्) पश्यत्यनेकान्तं [व]स्तूनां परिणामतः ॥३८॥

द्रव्यषट्केऽप्यनेकान्त-प्रकाशाय विपश्चिताम् ।
प्रयोगान् दर्शयामास **सूरिश्रीराजशेखरः** ॥३९॥

इति स्याद्वादकलिका समाप्ता ॥ संवत् १४६५ वर्षे माघशुदि ७ दिने ॥

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभट स्वाध्याय

सं. उपा. भुवनचन्द्र

सज्झाय (स्वाध्याय) नामनो गुजराती काव्यप्रकार जैन साहित्यमां प्रसिद्ध छे. जैन ज्ञानभण्डारोमां आ प्रकारनी हजारो रचनाओ मळे छे. आवी एक अज्ञातकर्तृक सज्झाय अहीं प्रस्तुत छे. रचना पंदरमा-सोळमा सैकानी जणाय छे. सज्झायना सैकावार स्वरूपना नमूना तरीके आ रचना रसप्रद छे.

'भरहेसर०' प्राकृत सज्झाय प्रसिद्ध छे. अनु० ३९मां 'मुनिमाला' नामक कृति छपाई छे, ते पण 'सज्झाय' छे. प्रस्तुत 'सुभटस्वाध्याय' मुनिमालानी शैलीनी प्राचीन गुजराती रचना छे. छन्द चोपाई छे.

सज्झायनो विषय महामुनिओना गुणकीर्तननो छे. कविए महामुनिओने 'पराक्रमी योद्धा'ना रूपमां वर्णव्या छे. मोह, कर्म, परीषह, विपरीत संयोगो वगेरेनी सामे लडीने आ महापुरुषो विजेता बन्या छे. 'सुभट'नी कल्पना स्वीकारवाथी महासती-महासाध्वीओने कवि सज्झायमां स्थान आपी शक्या नथी. एक एक कडीमां एक एक महापुरुषना नामोल्लेख साथे एमना पराक्रमनुं अहोभावपूर्ण संक्षिप्त चित्रण करवामां आव्युं छे. सज्झायमां वारंवार 'जोइ न...' शब्दगुच्छ आवे छे. एनो अर्थ छे : जोने, जुओ ने. आना द्वारा कविए ए महानायकोना प्रराक्रम तरफनो आश्चर्यभाव सुन्दर रीते व्यक्त कर्यो छे. प्रथम बे कडीनो भावार्थ :

"जिनशासनमां जे सुभटो छे तेमनुं हूं हवे प्रगट वर्णन करीश, जेमणे कर्मनुं नामनिशान मिटावी दीधुं अने शिवपुरीमां जइने वस्या."

"जिनशासनमां स्थूलभद्र योद्धा छे - तेमनुं युद्ध खरेखर दोह्यलुं - आकरुं हतुं; मदनने मारीने जेमणे वेश्याने प्रतिबोध पमाड्यो."

शब्दो विशे

नीठविउ (१) : नाश कर्यो, अन्त आण्यो

राउत (३) : सरदार (राजपुत्र)

सुधू (सुध ?) (४) : खबर, समाचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भडिवाइ (५)	:	वीर तरीके ख्याति
भडिया (६)	:	लड्या
कासगी (१०)	:	काउसग्गमां
प्राण (११)	:	पराणे
अनमूली (१३)	:	उन्मूलीने-ऊखेडीने
चापडी (१७)	:	चपटीमां ? थप्पडमां ?
[१]ठाह (२१)	:	स्थान
फेडिउ (२१)	:	पूरुं कर्युं, दूर कर्युं.

जिनशासनि जे अछइ सभट, ते हूं हवडां कहिसु प्रगट;
जीणि नीठविउं नाम कर्महं तणूं, जई वशा ते शवपुरि भणूं. १

थूलिभद्र जिनशासनि भणूं, खरूं झूझ दोहिलूं तस तणू,
मारी मयण वेशा कीउ बोध, **थूलिभद्र** जिनशासनि योध. २

वडउ राउत भणूं **जंबूकमार**, तेहनइ अछइं अट्ठ कुमारि;
पांच सइं सरसी लीधी दीख, कर्म भांजी भड लाई सीख. ३

हलूउ **नेमिकुंअर** मन भणउ, लहूआतणइ(उ?) सुधू सांभलू;
लहूउ दिणीयर हुई तेजवंत, रथि चडिउ राजलिदे-कंत. ४

जोइ न झूझतणु भडिवाइ, वंसह कोटि चडिउ सोहाइ;
तिणि चडी कीधु कर्मसंहार, **इलाईपुत्र** अभिनवउ झूझार. ५

जोइ न झूझ तणी(भणी?) एक [२]मारि (?), आठ-बत्रीसी मेल्ही नारि;
धनु-शालिभद्र बे चालीआ, तपसंयम लेई कर्मसिउ भडिआ. ६

जोइ न झूझतणी एक जाति, वसइ वेसाघरि दीह नइ राति;
दस प्रतिबोधी करि आहार, **नंदिसेण** अभिनवु झूझार. ७

जोइ न झूझ तणी एक - लि(चालि?), सरि बांधी माटीनी पालि;
खइरअंगार दही कर्मजाल, इणी परि झूझइ **गयसकमाल**. ८

---

१. ठाह-थाह-थाग-ताग-एनो ताग पामी लीधो ।

२. मारि-मार-कामदेव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिलाइपुत्र मिलिउ चोरह सत्थि, मारी स्त्री मस्तिक लिउ हत्थि;
पूछिउ धर्म सुजाणे कहिउ, इणी परि झूझी कर्म सिउं भयु(भडिउ ?) ९

सेठि **सुदरसिण** कासगी रहिउ, अंतेउरि ऊपाडी लीउ;
राणी जोउ प्राणविनाण, सेठिइं तिहानि मेहल्युं माण. १०

सेठि **सुदरसिण** खरु सविचार, सील जि(नि?)समकित जस हथीयार;
मनह माहि समरइ नवकार, जोइ न वणिक सउ झूझार. ११

बाहूबलि अभिनवु झूझार, कर्म अनमूली कीधा छार;
वरस दिवस सोइ कासगि रहिउ, कर्म अनमूली शिवपुरि गयउ. १२

अइमतु बेडी जिम तरि, जलह माहि-बाहिरि सोइ फिरइ;
पणग-दिग-मट्टी ऊचरि, अठवरीसु केवल वरि. १३

वयरसीह जिनशासणि सार, लहुया लगइ पुण अंग इग्यार;
जातमात्र जिणि मोह जीपिउ, जोइ न बालक किम झूझिउ. १४

अवंतीनयर **अवंतीसुकुमार**, गुरुवयण सांभली विसाल;
नलनीगल विमाण जव दीठ, रयणमाहि सोइ जई बईठ. १५

जोइ न झूझइ साहसधीर, **दशणभद्र** चालिउ वंदणि वीर;
सरपिति चालिउ कोपि चडी, तीणइ जीतु एकइ चापडी. १६

क्षमाखण्ड करि ग्रहिउ वीर, **कूरगड** जोवउ साहसधीर;
वार करंता कर्म शवि नीठ, मुगतिपुरी सोइ जई बईठ. १७

वंकचूल बंकु झूझार, क्रोध हणिउ जीणइ खड्[ग]प्रहारि;
अणजाण्या फल शवि परिहरी, संसारसमुद्र गयउ लीला तरी. १८

राजगृहनयरि **रोहणिउ** चोर, कर्म उनमूली कीधां दूरि;
गाथा एकमांहि प्रतिबोध, इणी परि झूझइ रोहणीउ योध. १९

कालकसूरि प्रभावक हूआ, **सरसति** कारणि ते झूझूआ;
गरदभिलनउ जेणिइ फेडिउ ठाह, जिणशासण मांहि करिउ ऊछाह. २०

बीजा हूआ **कालिकसूरि**, सष्य प्रमाद सवि कीधा दूरि;
स्वामि शीमंधर करि वखाण, सुरपिति वंदणि आविउ **पिठांण** २१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्ट भणुं **सयंभवसूरि**, नामिइं अष्ट महासिद्धिपूर;
होम करंता प्रतिबीझव्या, **प्रभवस्वामि** पाटि झूझीआ. २२

कयवन्ना रथि(षि?) त्तणु विचार, इणइ अनुक्रमि हुई सातइं नारि;
रुद्धि छांडी जिण संयम लिउ, कयवनु ईणि परि झूझीउ. २३

खंदकसीसह करूं प्रणाम, दुरिय पणासइं जेहनइ नामि;
सष्य पांच सइस्यूं झूझिआ, मरण कालि नवि कायर हूआ. २४

जगत्रय वदीतु हऊ झूझार, मोदिक सरीसा कर्म कीया छार;
यादववंश मांहि वंदणू, **ढंढणकुमार** नाम तस तणूं. २५

गोयम गणहर गुणभंडार, जेहनी लबधि घणि विस्तारि;
पनरस तापस प्रतिबूझव्या, **अष्टापद** गिरिवरि झूझूआ. २६

चक्रवर्ति **भरत्थेसर** भणूं, खरूं झूझ दोहिलूं तस तणूं;
आरीसा मांहि केवलनाण, ईणि परि झूझि भड संग्रामि. २७

शरणागत छलि(वछलि?) भडीउ **वीर**, **शांतिजिणेसर** साहसधीर;
तेहना गुण न लाभइ पार, एक जीभ किसूं कहूं विचार ? २८

इणि अनुक्रमि जिणशासनि सार,
अनंत सभट नवि लाभइ पार;
भणइ गुणइ सांभलइ जि कोइ,
मुगतिरमणीइ तीह निश्चल होइ. २९

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगोदथी मोक्ष सुधी

प्रो. पद्मनाभ एस. जैनी

जैन शास्त्रो प्रमाणे जीवोनो निगोदथी मांडीने मोक्ष सुधीनो विकास क्रमिक अने उत्क्रान्ति स्वरूप होय छे. परन्तु आ विकास धीमो ज अने बधां सोपानोने ओळंगतो ज होय तेवुं आवश्यक नथी. एक नित्यनिगोद (अव्यवहार राशि)नो जीव निगोदमांथी नीकळी, मनुष्य थई, ते ज भवे मोक्षे पण जइ शके छे. आ वात मरुदेवीना उदाहरणथी सारी रीते समजी शकाय छे.

श्वेताम्बर जैनोमां मरुदेवीनी कथा प्रसिद्ध छे. परन्तु आगमो अने आगमेतर साहित्यमां आ वातने पुष्ट करनारां प्रमाणो केटलां - कयां छे - ते आपणे जोइए. पहेलां अंग साहित्यमां जोइए :

भगवतीसूत्रना अढारमा शतकमां भगवान महावीर अने माकन्दिकपुत्र वच्चे एक संवाद थाय छे. माकन्दिकपुत्र भगवानने पूछे छे : 'भगवन् ! कापोतलेश्यी पृथ्वीकाय त्यांथी मरी मनुष्य बनी मोक्ष जई शके ?'

भगवान कहे छे : 'हा माकन्दिकपुत्र ! कापोतलेश्यावाळो पृथ्वीकाय अपकाय के वनस्पतिकायनो जीव त्यांथी मरी मनुष्य बनी मोक्षे जई शके छे.'

आ वात, माकन्दिकपुत्र बीजा साधुओने कहे छे त्यारे ते साधुओ नथी मानता अने फरी भगवानने जई पूछे छे. त्यारे भगवान कहे छे : 'माकन्दिकपुत्र कहे छे ते साचुं छे. अने मात्र कापोतलेश्यावाळा ज नहीं, परंतु कृष्णलेश्या अने नीललेश्यावाळा पण पृथ्वीकाय, अपकाय तथा वनस्पतिकायना जीवो मरी, मनुष्यत्व पामी मोक्षे जई शके छे.'

आ सांभळी साधुओ माकन्दिकपुत्र पासे आवी वारंवार क्षमायाचना करे छे.

श्वेताम्बरीय कर्मशास्त्रोना नियमो आ त्रण कायना जीवोने असाधारण छूट आपे छे ज्यारे अग्नि-वायुकायना जीवोने तो मरीने मनुष्य थवानी पण छूट नथी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हवे, वनस्पतिमांथी नीकळी सीधा मनुष्य थई मोक्षे जवानुं उदाहरण मळे छे परंतु पृथ्वी-अप्कायनुं नथी मळतुं. अने जैनो, व्यवहार राशिमां रहेल पृथ्वी-अप्कायने छोडी व्यवहार-निगोदमां रहेल वनस्पति जीवनी, आवी उच्च परिस्थितिनुं कथन करती कथा लखे ते विचारणीय छे. विकलेन्द्रिय जीवोनी कक्षा पण निगोदना जीव करतां अहीं नीची देखाडी छे. कारण के तेओ अनन्तर भवमां मनुष्यत्व पामवा छतां केवलज्ञान/मोक्ष नथी पामी शकता.

मरुदेवी नित्यनिगोदमांथी सीधां आव्यां छे - तेवा उल्लेखवाळी कथा आगमेतर साहित्यमां वधारे जोवा मळे छे, पण आगमो-अंगोमां तेनो उल्लेख मात्र **स्थानाङ्ग सूत्रमां** ज छे.

स्थानाङ्ग सूत्रना चोथा स्थानमां चार अन्तक्रियाओनी वात करी छे तेमां आ उल्लेख छे.

प्रथम अन्तक्रिया, पूर्वनां कर्मो घणां ओछां होवाथी जे अल्पकष्टथी ज मोक्ष मेळवे तेवा संसारत्यागी अणगारने होय छे. **उदा:** भरत चक्रवर्ती.

द्वितीय अन्तक्रिया, पूर्वनां कर्मो घणां होवा छतां घणां कष्टो सहन करी जे अल्पकालमां ज मोक्ष मेळवे तेवा अणगारने होय छे. **उदा:** गजसुकुमाल.

तृतीय अन्तक्रिया, पूर्वनां कर्मो घणां होय अने तेने घणा काळ सुधी सहन करीने खपावे तेवा अणगारने होय छे. **उदा:** सनत्कुमार चक्रवर्ती.

चतुर्थ अन्तक्रिया, पूर्वनां कर्मो घणां ओछां होय त्यारे ओछा समयमां तेवा प्रकारनां तप-कष्टो सहन कर्या विना ज खपावे तेवा अणगार ने होय छे. **उदा:** मरुदेवी.

अहीं मूळ सूत्रमां क्यांय मरुदेवीना पूर्वभवनो उल्लेख कर्यो नथी. परन्तु तेनी वृत्तिमां अभयदेवसूरिए तेनो उल्लेख कर्यो छे तथा समाधान पण आप्युं छे के व्याख्या तथा उदाहरणमां सम्पूर्ण साधर्म्य न मळे.

आवश्यक निर्युक्तिमां मरुदेवीना प्रसंगने ५०० अबद्ध आदेशोमांनो एक आदेश मानेलो छे :

"एवं बद्धमबद्धं आएसाणं हवंति पंचसया ।
जह एगा मरुदेवी अच्चंतथावरा सिद्धा ॥१०२३॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेनी टीकामां **हरिभद्रसूरि** महाराज कहे छे : 'अत्यन्तस्थावर = अनादिवनस्पतिकायमांथी नीकळीने, मनुष्य थई, मरुदेवी सिद्ध थयां. वृद्धसम्प्रदायमां कह्युं छे के आर्हत प्रवचनमां ५०० आदेशो एवा छे जेनो निर्देश - पाठ अंग-उपांगोमां नथी. आ पण तेमांनो ज एक आदेश छे.

आवश्यक निर्युक्ति (श्लो. १३२०)नी हारिभद्री टीकामां मरुदेवीनी कथा कही छे. तेमां तेमणे भगवान ऋषभनुं दर्शन कर्युं होय के महाव्रतो ग्रहण कर्यां होय तेवो कोई उल्लेख नथी.

तेमने पूर्वजन्मोनी पण कोई स्मृति नहोती तेथी सम्यग्दर्शन प्राप्त करवा जरूरी सामग्री पण तेमनी पासे नहोती. वळी तेमणे एवां कयां पुण्य (क्यां-क्यारे) कर्यां हशे जेथी तेओ तीर्थंकरनां माता थयां ? अने आ मनुष्यभवमां पण तेमणे सम्यक्त्व क्यारे मेळव्युं हशे ?

सम्यक्त्व पूर्वभवोनी स्मृतिथी अथवा तीर्थंकर / प्रतिमाना दर्शनथी अथवा महाशोक-विषादादिथी थाय. (अहीं नाभिकुलकरना मृत्युनी वात मात्र **चउपन्नमहापुरिसचरियं**-मां ज आवे छे.) ऋषभदेव प्रत्येनो शोक तेवी आत्मिक सभानतावाळो नहोतो के जेथी सम्यक्त्व थाय.

आ रीते जोईए तो सम्यक्त्वप्राप्तिनुं कोई पण कारण तेमनी पासे नहोतुं अने जैन सिद्धान्त प्रमाणे तो रत्नत्रयीनी पूर्णता ज मोक्ष अपावे.

चउपन्नमहापुरिसचरियं-मां **शीलाङ्काचार्य** थोडीक हकीकतो उमेरे छे :

ऋषभदेवने केवलज्ञान थयुं तेनी जाण भरतने थाय ते पहेलां ज इन्द्रोए आवी समवसरणनी रचना करी. तेमां भगवाने देशना आपी पांच महाव्रतो समजाव्यां अने ८४ गणधरोनी स्थापना करी.

दरम्यान, भरतने जाण थतां ते मरुदेवीने हाथी पर समवसरण तरफ लई चाल्यो. त्यारे मरुदेवीए देवोना मुखेथी 'जय जय' एवा शब्दो सांभळ्या, साथे ज तेमणे तीर्थंकरनी अमृतमय देशना पण सांभळी अने ते सांभळतां ज तेमनां कर्मोनो घणो मोटो भाग क्षय पाम्यो, तेमनी भ्रमणाओ भांगी गई, हृदयमां आनन्द फेलायो अने पुत्र प्रत्येना रागनां बन्धनो तूटी गयां. तेओ क्षपकश्रेणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चडी केवलज्ञान पाम्यां अने ते ज वखते आयुः क्षय थये सिद्ध थयां. देवोए तेमनो उत्सव कर्यो अने भरतने जणाव्युं.

त्यार बाद भरत समवसरणमां गया. भगवाननी स्तोत्र बोलवा द्वारा स्तुति करी. पछी भगवाने देशना आपी, महाव्रतो समजाव्यां अने ऋषभसेन व. ८४ गणधरोनी स्थापना करी.

अहीं धर्मकथा-व्रतदान-गणधरस्थापननुं पुनः कथन करवामां शीलाङ्काचार्यनो हेतु-मरुदेवीए मोक्ष माटे जरूरी ज्ञान कई रीते मेळव्युं- ते छे. परन्तु आ विधान नन्दीसूत्रमां कहेला मरुदेवीना अतीर्थसिद्धत्व साथे संगत थतुं नथी.

ते ज ग्रन्थमां आगळ शीलाङ्काचार्ये ब्राह्मी-सुन्दरी कया कारणथी स्त्रीपणुं पाम्यां ते वर्णवे छे, परन्तु तेमणे मरुदेवीना स्त्रीत्व माटे कोई कारण आप्युं नथी, अने वनस्पतिकाय/निगोदमांथी तेओ सीधा ज मनुष्यत्व पाम्यां तेनो पण निर्देश करता नथी.

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमां **हेमचन्द्राचार्ये** पण आवो कोई निर्देश कर्यो नथी. अलबत्त तेओए योगशास्त्रनी स्वोपज्ञवृत्तिमां आ प्रश्न उठावीने तेना समाधानरूपे कह्युं छे के - योगना प्रभावथी मरुदेवीए शुक्लध्याननो अग्नि प्रज्वलित कर्यो अने कर्मोने भस्मीभूत कर्यां.

तत्त्वार्थसूत्रमां जो के, पूर्वना ज्ञाताने ज शुक्लध्यान संभवी शके छे, तेवुं कह्युं छे. छतां हरिभद्रसूरि आवश्यकनिर्युक्तिमां तेनो खुलासो करतां कहे छे के पूर्वना व्यावहारिक ज्ञान विना पण शुक्लध्यान संभवे छे अने ते माषतुष मुनि अने मरुदेवीनां दृष्टान्तोमां जोई शकाय छे.

उपर कहेला बधा ज सन्दर्भो, मरुदेवीए क्षपकश्रेणि करी हती तेम कहे छे; अने ते माटे व्यावहारिक व्रत-संयम अथवा बाह्य चारित्र आवश्यक नथी, भावपरिणामथी ज तेवी परिस्थिति उत्पन्न थई शके, तेवुं नोंधे छे.

वळी, बधा ज ग्रन्थो ए वातथी सभान छे के - मरुदेवीनी सिद्धत्वप्राप्तिमां घणा अपवादो- छूटो मूकवामां आव्यां छे. (तेथी ते आश्चर्यरूप छे.) अने **पञ्चवस्तुक-सङ्ग्रहनी शिष्यहिता वृत्ति**मां **हरिभद्रसूरि** पण आ ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात कहे छे.

मरुदेवीमां एवी ते शी योग्यता हती जे तेओने आटला टूंका गाळामां मोक्षे लई जाय ? - ए प्रश्ननो जवाब तथाभव्यत्वना सिद्धान्तथी आपी शकाय, तेवुं **उपा. यशोविजयजी** व. कहे छे. (**अध्यात्ममतपरीक्षा**). तथाभव्यत्व ए भव्यत्वनो ज विस्तार छे. ते सिद्धान्त प्रमाणे - जो के दरेक भव्य जीव समान ज होय छे, छतां तेओनुं तथाभव्यत्व जुदुं जुदुं होय छे. तेथी कोई जीव तीर्थंकर-गणधरादि बने, कोई सामान्य केवली बने. (अने ज्यारे तेओ सिद्ध बने त्यारे बधा समान ज होय.) अन्यथा तीर्थंकर-अतीर्थंकर जीवोमां कोई तफावत न रहे.

(**गोपीनाथ कविराजे** पण आ ज प्रश्न उठावीने कह्युं छे के :

'बधा ज जीवो समान होवा छतां केटलाक ज तीर्थंकर/ईश्वर बने छे- तो ते जीवोमां तेवी कई योग्यता छे अने तेओए तेने केवी रीते मेळवी छे ते आपणे जाणता नथी. परन्तु जैनदर्शन आ तफावतने समजावता सिद्धान्तो आपणने आपे छे.)

वळी, तथाभव्यत्वनां कारणो सिवाय पण जीवोने परस्पर जुदा दर्शावता बीजा तफावतो छे, तेम **ललितविस्तरा**नी टीकामां **भद्रङ्करसूरि** जणावे छे. तेओ कहे छे के **पुरिसुत्तमाणं** व. पदो तीर्थंकरना जीवनी सार्वकालिक उच्चतानुं प्रतिपादन करे छे. अहीं तेओ **क्षेमङ्करगणि**ना **सत्पुरुषचरित**नो सन्दर्भ आपे छे के - ज्यारे तीर्थंकरना जीवो अव्यवहारराशिमां होय त्यारे पण बीजा जीवोथी चडियाता होय छे. (मात्र तेओनी उच्चता ढंकायेली होय छे.) ज्यारे व्यवहारराशिमां आवे छे त्यारे, पृथ्वीकायमां चिन्तामणि रत्न वगेरे तरीके जन्मे, अपकायमां तीर्थजलपणुं पामे, तेजस्कायमां आरती व.नुं अग्नित्व पामे, वायुकायमां वसन्तऋतुमां सुगन्धीस्थाने जन्मे, वनस्पतिमां जन्मे तो कल्पवृक्षरूपे जन्मे. बेइन्द्रियमां दक्षिणावर्त्त शंख तरीके जन्मे, पंचेन्द्रियमां श्रेष्ठ अश्व/हस्ति व. बने इत्यादि.

आ रीते तीर्थंकरनो जीव बीजा जीवोथी जुदो पडे छे ते तथाभव्यत्वना सिद्धान्तने प्रमाणित करे छे. अने आ सिद्धान्तथी ज भव्यजीवनो मोक्ष तेना भव्यत्वना परिपाकथी जुदा जुदा समये थाय छे.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

(दिगम्बरो पण कहे छे के भव्यत्वनी गुणवत्ता जुदा जुदा आत्माओमां भिन्न भिन्न होय छे अने ते काललब्धि व. ने आधीन छे. परन्तु तेओ आ मुद्दानो उपयोग श्वेताम्बरोनी जेम करता नथी.)

★

निगोदजीवो तथा मोक्ष विशे यापनीय तथा दिगम्बरोनो मत

आचार्य **शिवार्य**नी **भगवती आराधना** परनी **यापनीय अपराजितसूरि**नी **विजयोदय** टीकामां - भरत चक्रवर्तीना घणा पुत्रोए दीक्षा लीधा बाद टूंका गाळामां ज मोक्ष प्राप्त कर्यो - तेवुं निरूपण छे. (मरुदेवीनो तेमां कोई उल्लेख नथी.) ते ज ग्रन्थमां आगळ कह्युं छे के -

'अनादिमिथ्यादृष्टि जीवो पण बहु ओछा काळमां-आराधनाना बळे - सिद्ध बनी शके. आत्मिक विकास माटे काल बहु महत्त्वनो नथी. केटलाय जीवो एक मुहूर्तमां ज संसारसमुद्रने तरी गया छे. भरतना वर्धन व. ९२३ पुत्रो नित्यनिगोदपणामांथी प्रथमवार ज त्रसत्व पामी ऋषभदेव पासे दीक्षित थई मोक्षने पाम्या छे.'

आ निरूपण श्वेताम्बर आगमोमां कहेल - नित्यनिगोदमांथी प्रथमवार ज त्रसत्वने पामी सिद्धत्व मेळवी शकाय छे ए - वातने प्रमाणित करे छे.

यापनीयो जो के आ वातने अनन्तकाळे थनारी के आश्चर्यरूप नथी मानता, वळी तेओ- मरुदेवीने श्वेताम्बरोए जे सरळताथी मोक्षप्राप्ति देखाडी छे ते रीते न मानता, व्रतग्रहण व. नी आवश्यकता उपर भार मूके छे.

स्त्रीमुक्तिप्रकरणना कर्ता **शाकटायन** (यापनीय) ब्राह्मी-सुन्दरी-राजीमती-चन्दना व.ना मोक्षनी वात करे छे पण मरुदेवीना सिद्धत्व अथवा मल्लिना तीर्थंकरत्वनो उल्लेख करता नथी. संभवित छे के मरुदेवीना प्रसंगनी आगमबाह्य होवाथी तेमणे नोंध लीधी नथी अथवा श्वेताम्बरोए जे रीते तेमनो मोक्ष मान्यो छे ते तेओने मान्य नथी.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरो तो तेमना सिद्धान्त प्रमाणे मरुदेवीनो मोक्ष मानता ज नथी. **आदिपुराण**मां आचार्य **जिनसेन** नाभिने १४मा कुलकर गणावे छे. तेमना मते तो नाभि पहेलां ज केटलाय समय पूर्वे युगलिकपणुं विच्छेद पाम्युं हतुं. तेओ मरुदेवीनुं वर्णन पण घणुं करे छे परन्तु तेमना पूर्वभव विशे मौन छे.

(**व्रतद्योतन-श्रावकाचार**मां **अभ्रदेव** कहे छे के मरुदेवी युगलिक हता. तेमनो पूर्वभव दर्शावता ग्रन्थकार कहे छे - पूर्वविदेहमां अमरालका नगरीमां वसुधारवणिकनां पत्नी वसुमती ए मरुदेवीनो जीव हतो. वसुमतीए एकवार बहु गर्वथी जैन मुनिने आदर विना दान आप्युं तेथी ते अनन्तर भवमां युगलिक तरीके जन्मी.

आ वात पारम्परिक दिगम्बर मतथी घणी जुदी पडे छे.)

आदिपुराणमां आ आगळ कह्युं छे के, मरुदेवी तथा नाभि पोताना पुत्रनी दीक्षामां उपस्थित हतां, परन्तु ते पछी - केवलज्ञान व. अवसरोमां तेओ उपस्थित नथी. वळी, आ अवसर्पिणीना प्रथम सिद्ध मरुदेवी नहि, परन्तु भरतना नाना भाई अनन्तवीर्य हता.

दिगम्बर पुराणोमां श्वेताम्बरीय-मरुदेवीना सिद्धत्व के यापनीय वर्धन बन्धुओना सिद्धत्वनो निर्देश नथी.

वळी, दिगम्बर मते नित्यनिगोदमांथी नीकळेल जीव मनुष्य तो थई शके परन्तु ते गृहस्थधर्मथी आगळ जई न शके. **षट्खण्डागमनी धवला** टीकामां कह्युं छे के, तेवो जीव-स्त्री के पुरुष - सम्यक्त्व के पांचमुं गुणस्थान प्राप्त करी शके. तेथी आगळ न जई शके.

तेथी, दिगम्बरोए मरुदेवीनुं सिद्धत्व मात्र **स्त्री** होवाना लीधे ज इन्कार्युं होय ते कदाच संभवित नथी.

भगवती आराधना अने **विजयोदय** टीका - बन्ने यापनीयोना छे तेवुं संशोधन ताजेतरमां ज नथुराम प्रेमी अने ए. एन. उपाध्येए कर्युं छे. अन्यथा, दिगम्बरो तेमां वर्णवेल वर्धन बन्धुओना सिद्धत्वने शी रीते स्वीकारी शके ? तेओए आ कथाने बदलवानो प्रयत्न अवश्य कर्यो छे. **द्रव्यसङ्ग्रह**नी टीकाना बीजा भागना पृ. ३१८मां लख्युं छे के, भरतना ९२३ पुत्रो नित्यनिगोदमांथी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीकळी इन्द्रगोप तरीके साथे ज जन्म्या. पछी ते बधा ज भरतना हाथीना पग नीचे कचडाई मरी गया अने भरतना ज पुत्रोरूपे जन्म पाम्या. पछी तेओए साथे ज दीक्षा लीधी अने टूंक समयमां ज तप व. कर्या विना मोक्ष पाम्या.

आ कथामां निगोदत्व अने मनुष्यत्वनी वच्चे इन्द्रगोपनो जन्म बताव्यो ते सहेतुक छे. दिगम्बर कर्मशास्त्रो प्रमाणे नित्यनिगोदनो जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय थई पछी जो मनुष्यत्व पामे तो ते, ते ज भवमां मोक्षे जई शके छे. इन्द्रगोप जो के संज्ञी पंचेन्द्रिय नथी छतां तेने तेवो मानी लेवामां आव्यो छे. कारण के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर - बन्ने कर्मशास्त्रो प्रमाणे बेइन्द्रिय - तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रिय जीवो मनुष्य बने तो पण मोक्ष न पामी शके.

धवला टीकामां **वीरसेन** कहे छे के, "वर्धनकुमारो नित्यनिगोदमांथी नीकळी, मनुष्यत्व पामी, क्षायिक 'सम्यक्त्व पाम्या हता." परन्तु तेनाथी आगळ जेओ कंइ कहेता नथी.

★

उपसंहार

कर्मसिद्धान्तोने बहु महत्त्व न आपीए तो मरुदेवीनी अथवा भरतना ९२३ पुत्रोनी कथा - 'निगोदथी मोक्ष' माटे बधां ज सोपानो जरूरी नथी ते देखाडे छे.

मरुदेवीनुं चरित्र ध्यानार्ह छे कारण के तेमां एक ज जीवनी कोई पण बाह्य परिस्थिति विना प्रगति-सिद्धि थई छे, जे आश्चर्यरूप छे, ज्यारे भरतना पुत्रोनी प्रगति आश्चर्यरूप नथी.

यामनीय-दिगम्बर कथाओ पण ध्यानार्ह छे. निगोदमां एक साथे अनन्तवार जन्म-मरण करी इन्द्रगोपना जीवो तरीके साथे ज जन्म, हाथीना पग-नीचे दबाई साथे ज मरण, फरी भरतना पुत्रो तरीके साथे ज जन्म-साथे ज दीक्षा अने अल्पकाळमां साथे ज मोक्ष, जाणे सामूहिक यात्रा !!

आवां चरित्रो सांभळी लोको तो ऋषभदेव-महावीर व.ना जीवोनी जेम घणा भवोनुं भ्रमण पसंद न करतां मरुदेवी व.नी जेम मोक्षे जवुं पसंद करे. पण आ पसंदगीनी वात नथी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरो जो के आ मुद्दा विशे कंई कहेता नथी, परन्तु श्वेताम्बरोनो **तथाभव्यत्व**नो सिद्धान्त आ विशे घणो प्रकाश पाडे छे के - जीवो तेमना माटेना पूर्वनिर्धारित पथो पर ज चालीने प्रगति करे छे, भले तेमना भव्यत्व समान होय.

["Jainism and Early Buddhism :
Essays in Honor of
Padmanabh S. Jaini" - Part I
पुस्तकमां छपायेल
From Nigoda to Moksa :
The Story of Marudevi लेखनो सारांश.]

गुजरातीमां सारांश : मुनि कल्याणकीर्तिविजय

★

Prof. Padmanabh S. Jaini
University of California
Berkeley, CA 94720
U.S.A.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय केसरियानाथजी

म. विनयसागर

धुलेवागढ़ में विराजमान होने के कारण ऋषभदेव धुलेवानाथ कहे जाते है । इस प्रकार केसर की बहुलता के कारण यह तीर्थ केसरियानाथजी के नाम से प्रसिद्ध है । यह तीर्थ अतिशय क्षेत्र / चमत्कारिक क्षेत्र है ।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती मे मेवाड़ देश में पाँच तीर्थ प्रसिद्धि के शिखर पर थे - १. देलवाड़ा / देवकुलपाटक (एकलिंगजी के पास), २. करेड़ा /करहेटक, ३. राणकपुर, ४. एकलिंगजी और ५. नाथद्वारा । इसमें से देलवाड़ा और करेड़ा समय की उथल-पुथल के साथ विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त न कर सके और राणकपुर, एकलिंगजी और नाथद्वारा यह तीनों तीर्थ आज भी उन्नति के शिखर पर हैं ।

महाराणा कुम्भा के पूर्व ही धर्मघोषगच्छीय श्रीहरिकलशयति ने मेदपाटतीर्थमाला की रचना की है, किन्तु उसमें कहीं भी केसरियानाथ का उल्लेख नहीं है । केसरियानाथजी की जाहोजलाली १९वीं-२०वीं शताब्दी में ही नजर आती है ।

दो समाजों के विचार-वैमनस्य और एकान्त आग्रह के कारण यह तीर्थ भी लपेटे में आ गया और कानून की शरण में चला गया । पद्मश्री पुरातत्त्वाचार्य मुनिश्री जिनविजयजी ने भी पुरातात्त्विक प्रमाणों के साथ अपने बयान दिये थे । एकान्तवादिता और अपने कदाग्रह के कारण कदम-ब-कदम उच्चतम न्यायालय में पहुँचा ।

कुछ दिनों पूर्व हुए उच्चतम न्यायालय के फैसले / आदेश को लेकर केसरियाजी में जो खुलकर ताण्डव नृत्य खेला गया वह वस्तुतः लज्जाजनक ही है और उसकी भर्त्सना भी करनी चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय के आदेशानुसार यह मन्दिर जैन है और राजस्थान सरकार ४ महीन के भीतर ही इसको जैन समाज के अधिकार में दे दे । इस प्रसंग के लेकर कुछ सम्भ्रान्त सज्जनों ने मुझसे अनुरोध किया कि इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण हो तो आप प्रस्तुत करें । स्वाध्याय के दौरान १९वीं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०वीं शती के तीन प्रमाण मुझे प्राप्त हुए हैं ।

तपागच्छीय दीपविजय कविराज बहादुर ने केसरियानाथजी के माहात्म्य को लेकर केसरियानाथ की लावणी विक्रम संवत् १८७५ में लिखी है । यह लावणी हिन्दुपतिपातशाह महाराणा भीमसिंह के राज्य में उदयपुर में लिखी गई है ।[१]

मेवाड़ देश के धुलेवा नगर में आदिनाथजी (केसरियानाथजी) की मूर्ति विराजमान है । यह मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है । त्रेतायुग में लंकापति रावण द्वारा यह मूर्ति पूजित रही । भगवान रामचन्द्र द्वारा लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उस मूर्ति को रामचन्द्र जी पूजनार्थ लंका से अयोध्या ले जा रहे थे । उज्जैन में ही यह मूर्ति अचल हो गई और आगे न बढ़ी फलतः यह मूर्ति वही विराजमान रही । उज्जैन में ही महाराज प्रजापाल की पुत्री मदनसुन्दरी के अत्याग्रह से कुष्ठ रोगी श्रीपाल ने भी पूजा की । इस मूर्ति के न्हवण/प्रक्षाल जल के छिड़काव से श्रीपाल के साथ ७०० कुष्ठ रोगियों का भी कुष्ठ रोग शान्त हो गया ।

कुछ समय बाद यह मूर्ति वागड़ देश के बड़ौद नगर में विराजमान रही । दिल्लीपति मुगल नरेश महाराणाओं से लड़ने के लिए सेना लेकर आया। भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु वह विजय प्राप्त न कर सका । वहाँ से मूर्ति गाड़े में रखकर धुलेवा नगर के जंगल में गुप्त रूप से रखी गई । गोवालियों के द्वारा ज्ञात होने पर संघ ने मिलकर इस मूर्ति को प्रकट किया और संघ ने उस वंशजाल से उस मूर्ति को निकाला । मूर्ति कुछ क्षत-विक्षत हो गई थी । उस मूर्ति पर लापसी का लेप किया गया, फिर भी कुछ अंशों में मूर्ति पर निशान रह गए । बड़े महोत्सव के साथ यह मूर्ति मन्दिर बनाकर स्थापित की गई । संवत् १८६३ में मराठा भाऊ सदाशिवराय ने लूटपाट के हेतु मेवाड़ पर हमला किया । उसने सुन रखा था कि जन मानस के आराध्य देव धुलेवानाथ के भण्डार में बहुत द्रव्य है । लूटने के लिए वहाँ आया। अधिष्ठायक भैरुं देव ने घोड़े पर चढ़कर रक्षा की । मराठों के पास विशाल सैन्य था । भयंकर युद्ध हुआ । इस युद्ध में धुलेवाधणी (कालाबाबा) के

१. पद्य संख्या ६१, ६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त भीलों ने अपने बल और सैन्य के साथ इसमें भाग लिया, भाऊ सदाशिव के घाव लगा और वह भाग गया तथा भीलों के सहयोग से केसरियानाथ कि जीत हुई । धुलेवानाथ, ऋषभदेव केसर से गरकाव रहते हैं इसीलिए केसरियानाथ कहलाते हैं । पश्चात् कवि ने कलियुग में भी ऋषभदेव की अत्यन्त भक्तिपूर्ण स्तवना की है ।

जोधपुर निवासी मरुधररत्न आशुकवि दाधीच पण्डित नित्यानन्दजी शास्त्री ने विक्रम संवत् १९६७ में पुण्यचरित नामक महाकाव्य संस्कृत भाषा में १८ सर्गों में लिखा है । पुण्यचरित वस्तुतः प्रवर्त्तिनी पुण्यश्रीजी का जन्म से लेकर १९६७ तक की घटनाओं का सविस्तर वर्णन है । किसी जैन साध्वी पर लिखा गया संस्कृत में यह प्रथम महाकाव्य है ।

(पुण्यश्री परिचय - जन्म १९१५ गिरासर गाँव, माता-पिता नाम - कुन्दन देवी-जीतमलजी पारख, जन्म नाम - पन्ना कुमारी, दीक्षा - १९३१, गुरु - लक्ष्मीश्रीजी, दीक्षा नाम - पुण्यश्री, स्वर्गवास - १९७६ जयपुर ।)

इस काव्य के सर्ग ११ श्लोक ७ में लिखा है कि-

संवत् १९५८ में प्रवर्त्तिनी साध्वी पुण्यश्रीजी से निवेदन किया गया कि आप सिद्धाचल तीर्थयात्रा के संघ में चलें, किन्तु उन्होंने यह कहकर अस्वीकार किया कि केसरियानाथ तीर्थ की यात्रा करने मुझे जाना है इसीलिए मैं नहीं चल सकती ।

श्लोक १३ से १९ तक में लिखा है कि-

१८ साध्वियों एवं संघ के साथ पुण्यश्रीजी चैत्र सुदी ९, १९५९ के दिन केसरियाजी पधारी और भक्तिपूर्वक केसरियानाथ भगवान कि स्तुति की ।

श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरचरित्रम्, कर्त्ता - जयसागरसूरि, रचना संवत् - १९९४ पालिताणा, यह संस्कृत का महाकाव्य ५ सर्गात्मक है । प्रकाशन सन् - २००४

(श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि - जन्म १९१३ चौमु गाँव, माता-पिता नाम - अमरादेवी-मेघराजजी बाफना, जन्म नाम - कृपाचन्द्र, यति दीक्षा - १९२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैत्र वदी ३, गुरु-युक्तिअमृत मुनि, दीक्षा नाम कीर्तिसार, क्रियोद्धार - १९४५, आचार्य पद - १९७२ पौष वदी १५, आचार्य नाम - जिनकीर्तिसूरि किन्तु जिनकृपाचन्द्रसूरि के नाम से ही प्रसिद्ध हुए, स्वर्गवास - १९९४ माघ सुदि ११ पालिताणा ।)

सर्ग २, श्लोक ८६-८७ के अनुसार कृपाचन्द्रसूरि संवत् १९५२ में भी धुलेवा तीर्थ की यात्रा के लिए पधारे थे ।

संवत् १९८० में इस काव्य के तृतीय सर्ग श्लोक १८४ से १८८ तक में वर्णन मिलता है कि :-

श्रीकालिकातानगरीनिवासी-सच्छ्रेष्ठि-चम्पाऽऽदिकलालमुख्यः ।
प्यारेसुयुक् लालमहेभ्यकाऽऽदेः, सुखेन संघः समुपागतोऽत्र ॥१८४॥

श्रीसंघपत्याग्रहतो महीयान्, प्रभावकश्रीजिनकीर्तिसूरिः ।
सशिष्यकस्तेन समं चचाल, कर्तुं तदा केसरियाजियात्राम् ॥१८५॥

(युग्मम्)

संघेन सार्धं समुपागतोऽत्र, श्रीमत्प्रभुं केसरियाजिनाथम्;
प्रैक्षिष्ट भक्त्याऽतुलया सशिष्यः, संस्तुत्य मोदं ह्यधिकं समाप ॥१८६॥

मासद्वयं तत्र सुहेतुतोऽस्थात्, विधाय भूयिष्ठपरिश्रमं सः ।
सिताम्बरीयाऽखिलजैनसंघ-स्वामित्वमत्रत्य-सुचैत्यकेऽस्ति ॥१८७॥

एतच्छिलालेखमलब्ध तत्र, यो गुह्य आसीदुपरिस्थितत्वात् ।
तल्लेखमुर्वीपतिरप्यपश्यत्, श्राद्धाऽऽदिलोका अपि ददृशुश्च ॥१८८॥

अर्थात् - कलकत्ता नगर निवासी श्रेष्ठि चम्पालाल प्यारेलाल संघ सहित वहाँ आए थे । संघपति के अत्याग्रह से श्री जिनकीर्तिसूरि (कृपाचन्द्रसूरि) अपने शिष्य मण्डल के साथ केसरियाजी तीर्थ की यात्रा करने के लिए चले । संघ के साथ केसरियाजी पहुँचे । शिष्यों से युक्त आचार्य अतुलनीय भक्ति के साथ प्रभु के दर्शन कर, स्तुति कर प्रमुदित हुए । वहाँ विशेष कारण से २ माह तक निवासी किया । यह तीर्थ श्वेताम्बर अखिल जैन संघ का है और इसका प्रमाण इस चैत्य के भीतर ही है । इसलिए उसको ढूंढने का विशेष प्रयत्न किया, किन्तु वह शिलालेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ । विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिश्रम पूर्वक शोध करने पर वह दीवार पर लगा हुए दृष्टिगत हुआ । उस लेख को महाराणा और संघ ने भी देखा । (उस शिलालेख में यह स्पष्ट अंकित था कि यह तीर्थ श्वेताम्बर जैन संघ का ही है ।)

संवत् १९८० में ही जिनकृपाचन्द्रसूरि ने चार स्तवनों की भी रचना की । एक स्तवन में लिखा है :- गढ़धुलेवा के स्वामी ऋषभदेव कि उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह मूर्ति पहले लंका में विराजमान थी और रावण नियमित रूप से पूजा करता था । पश्चात् यह मूर्ति उज्जैन में स्थापित हुई और श्रीपाल नरेश की कुष्ट व्याधि को दूर किया । उसके पश्चात् यह मूर्ति वागड़ देश के बड़ौद गाँव में विराजमान हुई और वहाँ से धुलेवा आई ।

(ये चारों स्तवन बृहद्स्तवनावली में प्रकाशित हैं । यह पुस्तक संवत् १९८४ में प्रकाशित हुई थी ।)

मुझे यह स्मरण में आता है कि लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व श्री अगरचन्द्रजी नाहटा ने केसरियाजी तीर्थ के कुछ लेख मेरे पास भेजे थे । उनमें से अधिकांश मूर्तियों के लेख विजयगच्छीय (मलधारगच्छ का ही एक रूप) श्रीपूज्यों द्वारा अनेकों मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थी जो इस मन्दिर में विद्यमान हैं । विजयगच्छ की दो शाखाएँ थी - एक बिजौलिया कोटा की और दुसरी लखनऊ की । बिजौलिया शाखा के श्रीपूज्यों का आधिपत्य मेवाड़ देश में था, अतः इसी परम्परा के श्रीपूज्यों (श्रीसुमतिसागरसूरि, श्रीविनयसागरसूरि, श्री तिलकसागरसूरि आदि जिनका सत्ताकाल १८-१९वीं शती है) ने प्रतिष्ठाएँ करवाई थी ।

जिस प्रकार दक्षिण भारत के तैलंगानाथक्षेत्र में कुलपाक तीर्थ माणिक्यदेव ऋषभदेव हैं । इस क्षेत्र के आदिवासी जनों के ये माणक दादा के नाम से मशहूर है । तैलंगवासी क्षेत्र के आदिवासी इनको माणकबाबा के नाम से पहचानते हैं । वार्षिक मेले पर ये आदिवासी पूर्व संध्या पर ही आ जाते हैं भक्तिभाव पूर्वक माणकबाबा की अपने गीतों में स्तवना करते हैं, मानता मानते हैं, दर्शन, विश्राम करते हैं और वापिस चले जाते हैं ।

जिस प्रकार अतिशय क्षेत्र महावीरजी मीणा जाति के आराध्य देव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं । मीणालोग ढोक देते हुए जाते हैं, दर्शन करते हैं, उत्कट भक्ति से उनके गुणगान करते हैं, यहाँ तक की मेले के दिवस मीणा जाति का प्रमुख के द्वारा ही रथ का संचालन करने पर रथयात्रा निकलती है ।

उसी प्रकार केसरियानाथजी भी भीलों के कालाबाबा हैं । वे बाबा के दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते हैं, ढोक देते हुए आते हैं, मिन्नते माँगते हैं, मिन्नते पूर्ण होने पर पुनः ढोक देने आते हैं, अपने जीवन के समस्त कार्यों में कालाबाबा को याद करते हैं । कालाबाबा ही उनका उपास्य देव है । इनके आवागमन, पर, दर्शन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न तो पूर्व में था और न आज है ।

आज से ६०-६५ वर्ष पूर्व मेवाड़ देश और गोरवाड़ प्रदेश में जब कोई भी आपस में मिलते थे तो अभिवादन के तौर पर जय केसरियानाथ की इन शब्दों से अभिवादन करते थे । सारा राजस्थान गुजरात महाराष्ट्र आदि के भक्तों के झुण्ड के झुण्ड यहाँ यात्रार्थ आते थे, केसर चढ़ाते थे, वहाँ प्रतिदिन छटांग, सेर ही नहीं अपितु मणों के हिसाब से केसर चढ़ाते थे । इसी केसर के कारण भगवान आदिनाथ भी केसरियानाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि यह तीर्थ श्वेताम्बर जैन संघ का है । कृपाचन्द्रसूरि चरित्र के अनुसार संवत् १९८० में श्वेताम्बरत्व सूचक शिलापट्ट भी था जिसको महाराणा ने स्वयं देखा था । अतः राजस्थान सरकार से निवेदन है कि नियमानुसार इसका अधिकार एवं व्यवस्था श्वेताम्बर जैन समाज को प्रदान कर अपने कार्यकाल को सफल बनावें ।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन

उपा. भुवनचन्द्र

अनु० ३९मां प्रगट थयेल 'मुनिमाला' नामक प्राकृत कृति 'भरहेसर०' सज्झायनी शैलीमां रचाई छे. 'भरहेसर०' सज्जायनुं एक नाम 'ऋषिमण्डल' पण छे. 'मुनिमाला' अने 'ऋषिमण्डल' ए बे नामोनुं साम्य प्रगट छे. गा. १९मां क(व?)च्छल्लं छे त्यां एवो सुधारो करवानी आवश्यकता नथी. 'कच्छुल्ल' एवुं एक नारदनुं नाम छे ज. अहीं 'कच्छ(च्छु)ल्ल' एवो सुधारो करवो पडे.

विविधभाषामय कृतिओनी एक परम्परा जैन साहित्यमां सारी पेठे विकसी हती. आवी एक रचना आ अंकमां छे : षड्भाषामय श्रीऋषभप्रभुस्तव. आमां प्राकृतभाषानो चार श्लोको छे ते मरहट्ठी प्राकृतमां छे. मागधी वगेरे भाषाओ पण प्राकृत ज छे. आ स्तवमां पांच प्राकृत भाषाओ, अपभ्रंश, संस्कृत तथा समसंस्कृत - एम आठ भाषाओनो प्रयोग थयो छे एम कही शकाय. कर्तानी विद्वत्ता स्वयंप्रकाशित छे. टिप्पण होवाथी अर्थबोध सुगम थयो छे.

'तपागच्छ गुर्वावली स्वाध्याय' ऐतिहासिक सामग्री लेखे उपयोगी रचना छे.

'सत्तरभेदपूजा'नो स्तबक श्री शीलचन्द्रसूरि द्वारा सम्पादित थई आ अंकमां छपायो छे. बे टबानुं संकलन कर्युं छे; परंतु बंने भिन्नकर्तृक छे, तो बंने भिन्न ज प्रगट करवा जोइता हता, जेथी बंनेनी विशेषता वधु स्पष्ट समजी शकात. मुद्रित पूजामां प्रारम्भे वस्तु छन्द अपाया छे ते अन्य स्वतन्त्र कृतिमांथी लईने त्यां मूकवामां आव्या हशे. पूजाओना अन्ते बोलातां काव्यो अहीं अपायेल प्रतिना पाठमां नथी. तेथी निश्चित थाय छे के काव्यनी प्रथा अर्वाचीन छे. प्रथा शरु थया बाद कोई विद्वान मुनिवरे आ काव्यो अन्यत्रथी (सम्भवतः जैन 'कुमारसम्भव' जेवा महाकाव्यमांथी) लईने पूजाओना अंते जोड्या छे. प्राचीनतर काळमां पूजाओ गेय गीतिकाओने बदले श्लोक/छन्दमां वर्णववामां आवती. सत्तरभेदी पूजाना १७ वस्तुछन्द होय एवी अन्य रचनाओ पण छे. स्नात्रमह तथा १७ पूजाओमां प्राकृत गाथाओनुं गान पण कोई तबक्के थतुं हतुं. प्रस्तुत पूजामां प्राकृत गाथाओ छे, ते ए प्राचीन प्रणालिकानो अवशेष छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रित पूजा अने प्रस्तुत वाचनाना पाठोमां भिन्नतानी एक सूचि सम्पादके आपी छे, ने चर्चा पण करी छे. आ पूजाओ सर्व प्रथम मुद्रित थई त्यारे सम्पादन-संशोधननी प्रणाली स्थिर थई नहोती. भाषा के अर्थ न समजाय त्यारे तेना स्थाने भळता शब्दो लोकमुखे अने लोकजीभे गोठवाई जता. क्यारेक अशुद्ध समजीने मुद्रणकर्ता पोतानी समज प्रमाणे 'सुधारी' पण नाखता. आम त्यारना सम्पादकोना हाथे थयेलुं मिश्रण-परिमार्जन पाछळथी दृढ थई गयुं. धीरे धीरे ए परम्परागत पाठ ज साचो अने आधुनिक संशोधक शोध/समीक्षा करीने पाठ नक्की करे ते 'खोटो' ज मानी लेवानुं वलण पण रूढ थई गयुं. संशोधन-परिमार्जननी आवश्यकता विशे आजना जैनो (श्रावको अने साधुवर्ग पण) जागृत नथी- ए निराशाजनक छतां साची परिस्थिति छे.

आवी गेय कृतिओमां पाठनिर्णय करवा माटे विषय-भाषानी जाणकारी उपरांत राग-देशी-ढाळनी जाणकारी पण आवश्यक अने निर्णायक बने गीत ५, क-१मां 'ओरनकु' अने 'ओर देवनकुं' एवा बे पाठ मळ्या छे. कयो पाठ ग्राह्य बने ए समजवा माटे रागनुं बंधारण पण सहायक थाय. सम्पादक आचार्यश्री शास्त्रीय रागोना विषयमां जाणकारी धरावे छे, तेथी ए दिशामां पण विचारी शके.

पृ. २, क. १ना हवामां 'कूंकूं' शब्द विशे एक पंक्ति छे. तेनो भाव एवो समजाय छे के "कृष्णवाडी"ने बदले अहीं कुंकुम शब्द लीधो छे. कृष्ण वाडी ए केसरनुं बीजुं नाम होई शके. टबामां 'खाटी' छपायुं छे, पण ए कदाच वाचनभूल होय ने अहीं 'सीटी' (साटे =माटे) शब्द होय एवो विचार आवे. 'कृष्णो' छे त्यां 'कह्यो' होवानुं कल्पी शकाय.

क्षतिपूर्ण वाचनना कारणे पाठमां निरर्थक शब्दो सर्जावा पाम्या छे. ५.१३, दू. १-२ना टबामां 'राजेवा' छपायुं छे. शब्दोना अर्थमां एनो 'राजा जेवा" एवो अर्थ पण अपायो छे. टबानो पाठ जोतां भ्रान्ति क्यां थई छे ते जणाई आवे छे. 'रत्नमां हीरा जेवा' एम वांचवाने बदले "रत्नमांही राजेवा" वांच्युं छे. ५.१५, गीत, क. १ना टबामां 'ए तीनइं एक...' ए प्रमाणे वांचवुं. मोरनें (?) (५.१, गीत क. २)- अहीं प्रश्नार्थ जेवुं कशुं नथी. मोरनी पूंजणीथी पूंजवानी वात छे. हीरो (५.२, गीत, क. इ) नहीं, पण 'हरो'. ५.६,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दू. २ टबामां 'रविधवल' छे त्यां 'रवि'नो कोई सम्बन्ध बेसतो नथी. सन्दर्भ जोतां 'कुंद अनै' मचकुंद २ वि' (बेवि =बंने) - आम गेड बेसी जाय छे. लिपिकारो यथेच्छ जोडणी, शैली वापरता - ए तथ्य पण वाचन समये लक्ष्यमां रहेवुं जोइए.

'भाव प्रदीप' संस्कृत साहित्यना एक रसिक प्रकार-सभाशृङ्गार के काव्यविनोद-नी सुन्दर-सरस कृति छे. सम्पादके कृति अने तेना कर्ता विशे विवरण संकलित करी आप्युं छे. थोडांक शुद्धिस्थानो :

श्लो.	अशुद्ध	शुद्ध
२४	०सिन्दूरजो०	०सिन्दूरजो०
११३	गृहं प्रा०	गृहप्रा०
प्रशस्ति श्लो.		
२	०न्नानपंकजः	०न्नाननपंकजः

*

अनु० ४० मां प्रकाशित 'चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि' नामक प्राकृत भाषानी कृति चोवीश तीर्थंकरोना जीवनसम्बन्धित ३२ स्थानक (मुद्दा)नो संग्रह करती होवा छतां प्रतिभाशाली कविए वर्णनमां विविधता तथा हृदयोर्मिओ पण गूंथी लीधी होवाथी आखी रचना कोरुं वर्णन न बनतां रसाळ बनी छे. एक ज प्रकारनी विगतो कथनप्रकारना वैविध्यनी मददथी केवी स-रस रीते प्रस्तुत करी शकाय एना नमूना आ कृतिमां पुष्कळ प्रमाणमां मळे छे.

रचयिता विशे अने रचनासमय विशे सम्पादकोए चर्चा करी छे. कृतिमां ३२ स्थानकोनुं वर्णन छे. 'सप्ततिशतस्थानकप्रकरण' १७० स्थानकोनुं वर्णन आपे छे. प्रस्तुत रचना सप्तति०थी पूर्वेनी होय एवुं अनुमान करी शकाय, परंतु चोक्कस निर्णय पर आववा माटे अन्य प्रमाणोनी जरूरत रहे.

कृति प्रायः शुद्ध छे. हस्तप्रतना वाचनमां केटलेक स्थळे 'उ' तथा 'ओ'ना वाचनमां भूल थई छे : स्तो. २, गा. ६ अने स्तो. ८, गा. ६मां 'अज्जाउ' छपायुं छे त्यां 'अज्जाओ' पाठ शुद्ध गणाय. स्तो. १८, गा. ८मां 'संसारउ वि नीहरिउ' ए पंक्तिमां बंने उना स्थाने ओ होवो जोईए. जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवनागरी लिपिमां उ अने ओ वच्चे नजीवो फर्क राखवामां आवतो, ने ध्यानमां न लेवाय तो आवी भूल थई शके. स्तो. ६, गा. ३ : 'यतिवो' छपायुं छे. अहीं 'य निवो' एवो पाठ सुसंगत थाय. न-त ना वाचनमां आवी गरबड थती होय छे. ति समजी लीधा पछी 'यति' पाठ मनमां बेसे ए स्वाभाविक छे. आम एक खोटो पाठ बीजा गोटाळानुं निमित्त बनी जाय. आवा प्रसंगे अर्थनी संगति थाय छे के नहीं - ए होवाथी क्षति निवारी शकाय. स्तो २२, गा. १ भुओ नहि पण चुओ. स्तो. २३, गा. १ मां मात्रा खूटे छे. '० मोहं [जण-]मणुग्गहिउं 'एवो पाठ विचारी शकाय. स्तो. २३, गा. २मां ०वम्माण छे त्यां ०वामाण वांचवुं जोईए.

'सूक्तमाला' काव्यरसिकोने प्रसन्न करी दे एवी रचना छे. व्यवहारज्ञान साथे काव्यरस आमां माणवा मळे छे.

आदिनाथस्तोत्र अने पार्श्वनाथस्तोत्र द्वारा स्तुति-स्तव-स्तोत्रना भण्डारमां नवो उमेरो थाय छे. रचनामां प्रौढता छे. केटलांक स्तोत्रो ते ते परम्परा-गच्छ-समुदायमां सारा एवा समय सुधी गवातां रह्यां होय अने पछी विस्मृतिमां धकेलाई जाय एवुं बनतुं होय छे.

'आदिनाथबाललीला' लावणी नथी पण 'सलोको' के 'हालरडुं' प्रकारनी रचना छे. आवी रचनाओनुं माधुर्य एना गान समये ज अनुभवातुं होय छे. आजे जोके भाषा-जीवनशैलीना अन्तरने कारणे ए शक्य न बने. समाजजीवनना अभ्यासीने बसो-त्रणसो वर्ष पूर्वेना गुजरात प्रदेशना वस्त्रअलंकार-फळफूल-नास्ता-खानपान-मुखवास- बिछानां जेवी वस्तुओनी एक समृद्ध सूचि आ कृतिमांथी मळी रहे.

रूपचन्द्रकृत 'पंचकल्याणकानि' दिगम्बर सम्प्रदायानुसारी होवा छतां श्वेतां. मुनिए तेनी नकल ऊतारी छे ए तथ्य साहित्यविश्वमां सुज्ञजनोने वाड़ा-सीमाड़ा नडता नथी एवो संदेश आपी जाय छे. सम्पादकश्रीए नोंधमां लख्युं छे के "त्रोटक अने हरिगीत ए बे छन्दोमां समग्र कृति रचाई छे." ह.प्र.मां 'हरिगीत' एवो उल्लेख थयो जणातो नथी. आवी शृंखलाबद्ध रचनाओ घणी मळे छे. एमां दरेक कडी त्रोटक-चलती अथवा ढाळ-उलालो एवा बे भागमां वहेंचायेली होय छे. चलतीनुं बंधारण हरिगीत जेवुं ज जणाय छे, परंतु तेनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गानपद्धति अलग प्रकारनी हती.

आ अंकमां 'भिक्षाविचार - जैन तथा वैदिक दृष्टिसे" तेमज "जैन और वैदिक परम्परा में वनस्पतिविचार" एवा बे संशोधनलेखो प्रगट थया छे. बंने लेख पोताना विषयनुं तुलनात्मक परीक्षण-संकलन करे छे अने बंने परम्पराओनी विशेषता सुन्दर रीते स्पष्ट करे छे.

जैन देरासर
नानी खाखर - ३७०४३५
कच्छ, गुजरात

आवरण-छबी-परिचय

खम्भात-स्तम्भतीर्थना, कालान्तरे मस्जीदमां रूपान्तरित थयेला, एक जैन मन्दिरना अलङ्करणरूप खण्डावशेषनुं आ चित्र छे. १२-१३मा शतकनुं शिल्प होवानुं अनुमान थई शके.

आ. शालिभद्रसूरि पीठ पर बेठा छे, अने सामे बेठेला पांच साधुओने वाचना आपी रह्या छे, तेवुं आ शिल्पांकन छे. वादी कुमुदचन्द्र अने वादी देवसूरि वच्चे थयेल शास्त्रार्थने आलेखती चित्रमय काष्ठपट्टिका, आ शिल्पने जोतां सहज ज सांभरे.

खण्डित-त्रुटित हालतमां सांपडेली आ पेनल हाल प्रायः खम्भातनी आर्ट्स-कोमर्स कोलेजना, क्यारेक निर्माणाधीन एवा म्यूजियम माटे, त्यां संगृहीत छे; घणा भागे तो कोलेजना पटांगणमां क्यांक रझळती !

तेना पर वंचाता नामाक्षरो आ प्रमाणे छे :

०००चंद्र । भावदेव । भ. हरिश्चंद्र । भ. बहुदेव । धनदेव महत्तर। वा० शुभचन्द्रगणि । श्रीशालिभद्रसूरिः । भ. अभय ००० ।

थारापद्रीयगच्छमां आ.शालिभद्रसूरि १२मा शतकमां थया छे. आ तेमनी छबी हशे ?

— शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती

नवां प्रकाशनो :

१. **विनोदचोत्रीसी** : कर्ता हरजी मुनि, सं. कान्तिभाई बी. शाह, प्रका. गुजराती साहित्य परिषद - अमदावाद तथा सौ.के. प्राणगुरु जैन फिलो. एन्ड लिट. रिसर्च सेन्टर - मुंबई, ई. २००५

संवत् १६२४ मां एक जैन मुनि द्वारा रचाएल आ कृति विनोदात्मक ३४ पद्य-कथाओनुं विषयवस्तु धरावे छे. केटलीक कथाओ तो आपणने एटली बधी जाणीती छे के अेना वांचनमांथी पसार थतां, आ कथाओ सर्वकालिक अने विविधदेशीय होवानुं अवश्य लागवानुं.

शास्त्रीय सम्पादन केवुं सुग्रथित-सुव्यवस्थित अने लगभग उद्भवनारा महत्त्वना सघळा प्रश्नोनुं स्वयंभू समाधान आपे तेवुं होय-होवुं जोईए, तेनो अंदाज आ सम्पादनने अवलोकवाथी चोक्कस मळी रहे. प्रारम्भमां अभ्यासपूर्ण भूमिका, पछी समीक्षित कृति-वाचना, कथासंक्षेप अने छेवटे उपयुक्त परिशिष्टो - आ बधांने लीधे सम्पादन अभ्यासपूर्ण ज नहि, पण उत्तम अभ्यास करनाराओ माटे मार्गदर्शक बने तेवुं नमूनेदार थयुं छे. जयन्तभाई कोठारीनी चीवट अने सुघडतानी झलक आ सम्पादनमां जडे छे.

★

२. **सप्तभङ्गीप्रभा (सप्तभङ्ग्युपनिषत्)** - प्रणेता : आचार्य श्रीविजयनेमिसूरि; सं. कीर्तित्रयी; प्र. श्रीजैन ग्रन्थप्रकाशन समिति, खम्भात; ई. २००७, वि.सं. २०६३

वीसमी सदीना प्रभावक जैनाचार्यनी आ रचना नव्यन्यायनी प्रगल्भशैलीमां सप्तभङ्गीनी विशद चर्चा करती रचना छे. सं. २००८मां तेनुं प्रकाशन थयेलुं, जे अलभ्य थवाथी नवेसरथी सम्पादनपूर्वक आ प्रकाशित करवामां आवेल छे. अभ्यासीओने उपयोगी ग्रन्थ.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. **Nani Rayan** : The Mystery Unveiled : By Dr. Palin Vasa; Pub. K. S. Shri Hemachandracharya N.J.S. Smruti S. Shikshan Nidhi, Ahmedabad; 2007

कच्छ 'नानी रायण' नामे क्षेत्रमांथी उपलब्ध पुरातात्त्विक मूल्यवान् सामग्रीना आधारे थयेलुं महत्त्वपूर्ण संशोधन-अध्ययन, आ ग्रन्थ द्वारा पुलीन वसाए आप्युं छे. पुरातत्त्व अने इतिहासना क्षेत्रे बहुमूल्य प्रकाशन.

४. **सुभाषितसंग्रह-समुच्चयः** सं. डॉ. नीलांजना शाह, प्र. क. स. हेमचन्द्राचार्य न.ज.श. स्मृ. सं. शिक्षणनिधि, अमदावाद; ई. २००७

खम्भातना शान्तिनाथ ताडपत्र भण्डारनी ताडपत्र प्रतिओना आधारे सम्पादित पांच सुभाषितसंग्रहोनो समुच्चय आ पुस्तकमां थयो छे. नाना पण मजाना संग्रहो, ग्रन्थरूपे प्रथमवार सुसम्पादित थईने प्रगट थया छे. अध्येताओ माटे मूल्यवान् समुच्चय.

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांकळियुं : 'अनुसन्धान' २७ थी ४१ अंकोनुं

साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री - चारुशीलाश्री

कृति	कर्ता	सम्पादक	अनु.अंक	पृष्ठ
अंतरीक पार्श्वनाथ छन्द	वा. भावविजय	रसीला कडीआ	२९	६४
अज्ञातकर्तृक सुभाषितसंचय		शी.	२८	१
अष्टलक्षी : एक परिचय		विनयसागर	३६	३६
आदिनाथ-वीनती पूजा	अनन्तहंस	रसीला कडीआ	२७	६३
आदिनाथ-वीनती पूजा	सुरेन्द्रसूरि(?)	रसीला कडीआ	२९	५८
आदिनाथ-पार्श्वनाथ स्तोत्र	वा. ज्ञानप्रमोदगणि	विनयसागर	४०	३३
आदिनाथ बाललीला		शी.	४०	३९
आवरण-छबी-परिचय		शी.	४१	५५
ऋषभशतक	पं. हेमविजयगणि	मुनिकल्याणकीर्ति वि.	२९	१
कल्पव्याख्यानमांडणी	मुनि देवाणंद	शी.	२७	१३
गुरुस्थापनाशतक	श्रीधर	विनयसागर	३८	१
चतुर्दश पूर्व पूजा	महो. चारित्रनन्दी	शी.	३४	३१
चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि	आ. देवभद्रसूरि	विनयसागर	४०	१
चर्चा (तथा नोंध)	डो. हसु याज्ञिक	(तथा शी.)	२८	९६
'चाणाक्य'नुं एक दक्षिणी कथानक		शी.	२७	७३
चित्रकाव्यानि		मुनि धर्मकीर्तिविजय	३३	४७
चोत्रीस अतिशय स्तवन	कान्ह मुनि	पं. महाबोधि वि.	३४	४९
चोत्रीश अतिशयवर्णनगर्भित श्रीसीमन्धर जिनस्तवन	कमलसागर	पं. महाबोधि वि.	३८	४६
जय केसरियानाथजी	म. विनयसागर		४१	४५
जातिविवृतिः	पं. गुणविजय	शी.	३४	२३
(श्री)जिनमहेन्द्रसूरिजीको प्रेषित प्राकृत भाषाका विज्ञप्तिपत्र	पं. जयशेखर	विनयसागर	३३	८
जिनभक्तिमय विविध गेय रचनाओ		मुनिकल्याणकीर्ति वि.	३३	२०
जिनानां पंचकल्याणकानि (दिगम्बर०)	कवि रूपचन्द्र	शी.	४०	४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन कथासाहित्य	हसु याज्ञिक		२८	७४
जैन और वैदिक परम्परा में वनस्पतिविचार	डो. कौमुदी बलदोटा		४०	६७
जैन आगम अने मांसाहार : ऐतिहासिक चर्चा		शी.	४१	१
टूंक नोंध :		शी.	३०	६२
उपधान-प्रतिष्ठा पञ्चाशक विषे		शी.	३०	६२
- 'कन्धारान्वय' विषे		शी.	३०	६४
टूंक नोंध		शी.	३२	८८
- एक साध्वी प्रतिमा		शी.	३२	८८
- भुवनहिताचार्य		विनयसागर	३२	८९
टूंक नोंध : भद्रेश्वरमां उपलब्ध बे गुरुमूर्तिओ		शी.	३३	७४
टूंक नोंध : एक विलक्षण धातुप्रतिमा		शी.	३४	६०
टूंक नोंध :			३५	७९
- निष्कुळानन्दकृत शियळनी नव वाडनां पदो विषे		शी.	३५	७९
- नेशनल मिशन फोर मेन्युस्क्रिप्ट विषे		शी.	३५	७९
- मुखपृष्ठ चित्र विषे		शी.	३५	८१
टूंक नोंध : आ अंकना आवरणचित्र विषे		शी.	३९	९३
तपागच्छगुर्वावली स्वाध्याय	मुनि विनयसुन्दर	उ. भुवनचन्द्र	३९	२०
- गुरुस्तुति		उ. भुवनचन्द्र	३९	२३
- विजयहीरसूरिगीत	हंसराज	उ. भुवनचन्द्र	३९	२३
तरङ्गवती कथा तथा पादलिप्तसूरिः जैन के अजैन ?		शी.	३४	४३
तीर्थमालास्तव	आ. मुनिचन्द्रसूरि	शी.	३६	१
दोधकबावनी	कविं जशराज	साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री	३४	५३
धर्मलाभशास्त्र (ग्रन्थपरिचय)	उ. मेघविजयगणि	विनयसागर	३०	१
(श्री)नवफणापार्श्वनाथस्तव (अष्टभाषिक)		मुनिकल्याणकीर्ति वि.	३७	१०
नवां प्रकाशनो			२८	१०२
नवां प्रकाशनो			३३	९०
नवां प्रकाशनो			३९	९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवां प्रकाशनो			४०	८६
नाटिकानुकारि षड्भाषामयं पत्रम्	महो. रूपचन्द्र	विनयसागर	२७	१
निगोदथी मोक्ष सुधी	प्रो. पद्मनाभ एस.	जैनी	४१	३६
(श्री)नेमिनाथादिस्तोत्रत्रय		विनयसागर	३१	१३
- उज्जयन्तालङ्कार नेमिजिनस्तोत्र	आ. जिनपतिसूरि		३१	१६
- गौतमगणधरस्तवद्वयम्	आ. जिनेश्वरसूरि		३१	१८
पत्रचर्चा		शी.	२८	९८
पत्रचर्चा		मुनि भुवनचन्द्र	२९	७९
पत्रचर्चा		विनयसागर	३३	७५
- पाठक रघुपति		विनयसागर	३३	७५
- वाचक लब्धिरत्नगणि खरतरगच्छके थे		विनयसागर	३३	७७
पत्रचर्चा : षड्भाषाबद्ध चन्द्रप्रभस्तव के कर्ता जिनप्रभसूरि है		विनयसागर	३४	५५
पत्रचर्चा :		विनयसागर	२८	५४
- जसराज ही जिनहर्षगणि है		विनयसागर	२८	५४
- उ. चारित्रनन्दीकी गुरुपरम्परा एवं रचनाएं		विनयसागर	२८	५६
- कल्याणचन्द्रगणि		विनयसागर	२८	६२
- सम्पादकीय टिप्पणी : चिन्तन		विनयसागर	२८	६५
पन्नरतिथि	मुनीचन्द्रनाथ	शी.	२९	२३
परमयोगीराज आनन्दघनजी महाराज अष्टसहस्री पढाते थे		विनयसागर	३६	२९
परीहार्यमीमांसा	मुनिनेमिविजय-मुनिआनन्दसागर	शी.	४१	१२
पञ्चकपरिहाणि तथा आलोचना विधान	आ. जयसिंहसूरि	शी.	३७	१
'प्रमाणसार'विषे		शी.	२७	६७
प्रणम्यपदसमाधानम्	उ. सूरचन्द्र	विनयसागर	३३	६९
(श्री)पार्श्वनाथस्तोत्रद्वयम्	श्रीवल्लभोपाध्याय	विनयसागर	२८	२९
-पार्श्वनाथस्तोत्रम्		विनयसागर	२८	३१
-तिमिरीपुरीश्वरश्रीपार्श्वनाथस्तोत्रम्		विनयसागर	२८	३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादपूर्तिमयं स्तोत्रपञ्चकम्		अमृत पटेल	३८	११
- रघुवंशपदद्वयसमस्यानिबद्धं युगादिजिनस्तवनं तदवचूरिश्च	मुनि रत्नसिंह	अमृत पटेल	३८	१४
- रघुवंशपदत्रयसमस्यानिबध्धं श्रीवीतराग स्तवनम्	मुनि रत्नसिंह	अमृत पटेल	३८	११
- भक्तामरपादपूर्तिमयं आदिजिनस्तोत्रम्	महीसमुद्रगणि	अमृत पटेल	३८	१९
- संसारदावा० पादपूर्तिमयं महावीरस्तोत्रम्	ज्ञानसागरसूरि	अमृत पटेल	३८	२५
- आनन्दानम्र० पादपूर्तिरूप श्रीशान्तिजिनस्तवनम्	ज्ञानसागरसूरि	अमृत पटेल	३८	२८
- अवचूरि, रघुवंशसमस्यास्तोत्रस्यादिमस्य		अमृत पटेल	३८	३१
- अवचूरि, (२) रघुवंशसमस्यास्तोत्रस्याद्वितीयस्य		अमृत पटेल	३८	३२
- भक्तामरपादपूर्तिस्तोत्रटिप्पण		अमृत पटेल	३८	३३
प्राकृत-अंग्रेजी बृहद् कोषका निर्माण		डो. नलिनी जोशी	२९	९१
प्रो. जेकोबीना पत्रनो उत्तर	मुनि नेमिविजय-मुनि आनन्दसागर		४१	२२
भवस्थितिस्तवन	लक्ष्मीमूर्ति	डो. कान्तिभाई शाह	२८	४२
भावप्रदीप:	कवि हेमरत्न	विनयसागर	३९	७६
'भुवनसुन्दरीकथा'की विशिष्ट बातों का संक्षिप्त अवलोकन		शी.	३४	३५
भिक्षाविचार : जैन तथा वैदिक दृष्टिसे		डॉ. अनीता बोथरा	४०	५४
महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीनी बे रचनाओ		मुनिधुरन्धरविजय	३३	१
- सुविधि-पार्श्वजिनस्तव (अपूर्ण)			३३	२
- शङ्खेश्वर पार्श्वजिनस्तुति			३३	३
मानदत्तआदि मुनिकृत विविध स्तवन सज्झायो		साध्वी समयप्रज्ञाश्री	३५	५९
माहिती : मानवसर्जित दुर्घटनानो भोग बनेल एक विद्यातीर्थ		शी.	२७	८९
- *आश्वस्त करे तेवो वास्तविक वृत्तान्त (पूरवणी)*			२७	९३
माहिती : भाण्डारकर शोधसंस्थान विषे		शी.	२८	९९
माहिती : नवां प्रकाशनो			२९	१०३
माहिती			३१	६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती : स्मृतिशेष विद्वज्जनो			३२	१०१
माहिती : नवां प्रकाशनो			३५	८३
- पुस्तक विमोचन समारोह तथा संगोष्ठि			३५	८५
माहिती : नवां प्रकाशनो			३६	५९
माहिती : एक स्पष्टता		शी.	३७	७१
माहिती : भारतीय योग परम्परा के परिप्रेक्ष्यमें जैन योगविषयक त्रिदिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठीका पहलीबार आयोजन			३८	७१
माहिती : नवां प्रकाशनो			४१	५६
मुनिमाला	वा.सकलचन्द्रगणि	शी.	३९	१
मूर्त्तिपूजा प्रतिपादक बे लघु रचनाओ	आ. विजयोदयसूरि	शी.	३१	१
- मूर्तिपूजायुक्तिबिन्दु			३१	२
- मूर्तिमन्तव्यमीमांसा			३१	७
मेघकुमारगीत	कवि पूनपाल	रसीला कडिया	२७	५०
मेघदूतप्रथमपद्यस्याऽभिनवत्रयोऽर्थाः	महो.समयसुन्दर	विनयसागर	३२	२७
मेघदूत-खण्डना	पं. मानसागर	शी.	३२	३८
मेदपाटदेश तीर्थमाला	हरिकलश यति	विनयसागर	३६	३८
रागमाला : शान्तिनाथस्तवन	मुनि सहजविमल	शी.	३३	६३
(श्री)लाभानन्द (आनन्दघन) जी कृत बार भावना	आनन्दघन	शी.	३५	१५
लाभोदयरास (वाचना बीजी)	पं. दयाकुशल	शी.	२७	२७
लिङ्गप्राभृत, शीलप्राभृत, बारस अणुवेक्खा और प्रवचनसारकी भाषा के कतिपय मुद्दों का तुलनात्मक अभ्यास		डॉ. शोभना शाह	२८	३६
वर्धमानाक्षरा चतुर्विंशतिजिन-स्तुतिः	लक्ष्मीकल्लोलगणि	विनयसागर	३४	१
वसुदेव चुपई	हर्षकुल	रसीला कडीआ	२८	५१
वाचक प्रमोदचन्द्रभास	करमसीह	विनयसागर	३०	१
वासुपूज्यजिनपुण्यप्रकाशस्तवन	वा. सकलचन्द्र	डॉ. शोभना शाह	३०	१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञप्तिपत्री (महादण्डकाख्या) महो. समयसुन्दर	विनयसागर	३५	५
विविध भास रचनाओ मुनीचन्द्रनाथ	शी.	३५	२३
'विशेषावश्यक भाष्य'नो स्वाध्याय करतां सूझेल सुधारानी नोंध	शी.	३०	७२
" " "	शी.	३१	१०२
विशेषावश्यक भाष्यनुं शुद्धिपत्रक (३)	शी.	३४	४९
विशेषावश्यक भाष्यनुं शुद्धिपत्रक (४)	शी.	३६	५०
विहंगावलोकन (२४)	मुनि भुवनचन्द्र	२७	७९
विहंगावलोकन (२५)	मुनि भुवनचन्द्र	२७	८४
विहंगावलोकन	मुनि भुवनचन्द्र	२८	९५
विहंगावलोकन (२७)	मुनि भुवनचन्द्र	२९	९९
विहंगावलोकन (२८)	मुनि भुवनचन्द्र	३०	६६
विहंगावलोकन (२९)	उपा. भुवनचन्द्र	३२	१०९
विहंगावलोकन (३०)	उपा. भुवनचन्द्र	३३	८०
विहंगावलोकन (३१-३२)	उपा. भुवनचन्द्र	३३	८५
विहंगावलोकन (३३)	उपा. भुवनचन्द्र	३४	५७
विहंगावलोकन (३४)	उपा. भुवनचन्द्र	३५	८८
विहंगावलोकन (३५-३६)	उपा. भुवनचन्द्र	३७	६६
विहंगावलोकन (३७)	उपा. भुवनचन्द्र	३८	६७
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	३९	९४
विहंगावलोकन (३९-४०)	उपा. भुवनचन्द्र	४१	५१
वीतराग-विनति (अज्ञातकर्तृक)	रसीला कडिया	३५	१
श्राविकाणां चतुर्विंशतिनमस्कार	शी.	३१	६१
श्राविकाद्वयव्रतग्रहणविधि	शी.	३६	१४
- 'बूटडि' श्राविकाव्रतग्रहणविधि		३६	१५
- 'लखमसिरि' श्राविकाव्रतग्रहणविधि		३६	१९
श्रीमद् भगवद्गीताके 'विश्वरूपदर्शन' का जैन दार्शनिक दृष्टिसे मूल्यांकन	डॉ. नलिनी जोशी	३७	४९
शुद्धिवृद्धि		३५	८७
(श्री)श्रेयांसजिनस्तवन विशेषसागर	उपा. भुवनचन्द्र	३८	३४
सत्तरभेदी पूजा-स्तबक: अवलोकन	शी.	३९	२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरभेदी पूजा-स्तबकः	वा.सकलचन्द्रगणि	साध्वी दीप्तिप्रज्ञाश्री	३९	३९
सप्तसन्धानकाव्यः संक्षिप्त परिचय	महो.मेघविजयगणि	विनयसागर	३५	७०
समयनो तकाजो : साम्प्रदायिक उदारता		शी.	३५	७५
(श्री) संघयात्रानां ढाळियां	श्रावक देवचंद	शी.	३१	२१
(श्री) सम्भवनाथ कलश	ज्ञानमहोदय(?)	रसीला कडिया	२७	५०
संशोधन विरुद्ध कट्टरता : घेरी चिन्तानो विषय		शी.	३६	४२
सांकळियुं : 'अनुसन्धान' १९ थी २६ अंकोनुं		साध्वी चारुशीलाश्री	२७	९५
सांकळियुं : 'अनुसन्धान' २७ थी ४१ अंकोनुं		साध्वी चारुशीलाश्री	४१	५८
(श्री)सिद्धचक्रयन्त्रोद्धारविधि-व्याख्या	आ. चन्द्रकीर्तिसूरि	शी.	३६	२३
सुगणबत्तीशी	पाठक रुघपति	साध्वी समयप्रज्ञाश्री	३२	१८
सुधारो			२८	९४
सुभट स्वाध्याय		उपा. भुवनचन्द्र	४१	३२
सूक्तमाला	आ. नरेन्द्रप्रभसूरि	अमृत पटेल	४०	२१
सूक्तिद्वात्रिंशिका	सारंगमुनि	अमृत पटेल	३७	२०
सूतकचोपाई	पुण्यसागरसूरि	मुनिकल्याणकीर्ति वि.	३२	२३
सेवालेखः	महो. मेघविजयगणि	शी.	३३	२८
स्याद्वादकलिका	राजशेखरसूरि	शी.	४१	२४
षड्भाषामय श्रीऋषभप्रभुस्तव (सावचूर्णि)		मुनिकल्याणकीर्ति वि.	३९	९
षड्भाषामय श्रीऋषभप्रभुस्तव के कर्ता श्रीजिनप्रभसूरि है		विनयसागर	४०	८३
हयाट्यखाटकाव्य-सटीक		मुनिकल्याणकीर्ति वि.	३७	१६
हर्मन जेकोबीना लेखनो जवाब	पं. गम्भीरविजयगणि	शी.	४१	१
हर्मन जेकोबीनो पत्र	प्रो. हरमन जेकोबी	शी.	४१	२०

—X—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org